ओ३म्

वैदिक शिक्षा प्रणाली एवं बौद्ध शिक्षा प्रणाली का तुलनात्मक अध्ययन

एम.फिल. (वैदिक अध्ययन) उपाधि हेतु प्रस्तुत

लघु शोध-प्रबन्ध

शोध निर्देशक
डॉ.देवेन्द्र सिंह
विभागाध्यक्ष
संस्कृत भाषा एवं साहित्य विभाग

शोधार्थी
दीपक आर्य
एम.फिल.वैदिक अध्ययन
नामाङ्कन सङ्ख्या- En17-00033

भाषा, साहित्य एवं कला प्राध्ययन केन्द्र
साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय
साँची, रायसेन (म.प्र.) 464645

2021

<u>शोधार्थी द्वारा घोषणा-पत्र</u>

मैं एतद् द्वारा घोषणा करता हूँ कि यह लघु शोधकार्य **"वैदिक शिक्षा प्रणाली एवं बौद्ध शिक्षा प्रणाली का तुलनात्मक अध्ययन", डॉ. देवेन्द्र सिंह, (शोध निर्देशक)** तथा विभागाध्यक्ष, संस्कृत भाषा एवं साहित्य विभाग साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय साँची, रायसेन के अधीन किया गया है। यह मेरा मौलिक लघु शोध- कार्य जिसे विभागीय शोध-समिति द्वारा अनुमोदित किया गया है।

मैं यह घोषणा करता हूँ कि मेरी जानकारी के अनुसार इस लघु शोध-प्रबंध में किसी भी प्रकार का कोई ऐसा तथ्य उद्धृत नही किया गया जो इस विश्वविद्यालय या किसी अन्य विश्वविद्यालय के समक्ष किसी उपाधि हेतु प्रस्तुत किया गया हो ।

साथ में यह भी घोषणा करता हूँ कि-

१. मैंने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम 2016 के मापदण्डों के अनुसार एक सत्र का कोर्स वर्क सफ़लतापूर्वक पूर्ण कर लिया है ।

२. मैंने लघु शोध-प्रबंध अंतिम रूप से जमा करने से पूर्व विभागीय शोध समिति के समक्ष प्रस्तुति भी दी है और दिए गये निर्देशों / सुझावों के आधार पर संशोधनों को सफलतापूर्वक शामिल किया है ।

३. मैंने लघु शोध-प्रबंध से सम्बन्धित एक शोध पत्र ISSN रेफ़र्ड जर्नल में प्रकाशित कराया है। जिसकी छायाप्रति शोध-प्रबंध के अन्त में संलग्न है एवं मैनें अपने लघु-शोध प्रबन्ध से सम्बन्धित राष्ट्रीय संगोष्ठी में एक शोध-पत्र भी प्रस्तुत किया है।

४. मेरे द्वारा प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध में कोई भी सामग्री, किसी अन्य शोध से या किसी प्रकाशित सामग्री का हिस्सा नहीं है, यदि Plagiarism के अन्तर्गत कोई भी सामग्री पायी जाती है तो उसके लिए मैं स्वयं उत्तरदायी रहूँगा ।

स्थान................ शोधार्थी

दिनांक.............. दीपक आर्य

<u>सर्वाधिकार</u>

मैं, **दीपक आर्य** एतद् द्वारा घोषणा करता हूँ कि साँची बौद्ध-भारतीय-ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय, साँची, रायसेन द्वारा इस लघु शोध-प्रबंध **"वैदिक शिक्षा प्रणाली एवं बौद्ध शिक्षा प्रणाली का तुलनात्मक अध्ययन"** को शैक्षणिक/अनुसंधान उद्देश्य से इलेक्ट्रॉनिक या प्रिंट प्रारूप में उपयोग के अधिकार होगें ।

नोट – शोधार्थी अथवा अन्य के द्वारा एम.फिल.लघु शोध-प्रबंध के आँकडों/ निष्कर्षों का प्रयोग व्यक्तिगत रूप से किया जा सकेगा, बशर्ते कि यथा स्थान विश्वविद्यालय के सर्वाधिकार का उल्लेख किया जाए ।

स्थान................ शोधार्थी हस्ताक्षर

दिनांक.............. दीपक आर्य

<u>प्रमाण-पत्र</u>

यह प्रमाणित किया जाता है कि प्रस्तुत लघु शोध-प्रबंध जिसका विषय **"वैदिक शिक्षा प्रणाली एवं बौद्ध शिक्षा प्रणाली का तुलनात्मक अध्ययन", श्री दीपक आर्य** द्वारा किया गया लघु शोध कार्य है, जिसे साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय में एम.फिल.उपाधि हेतु मेरे निर्देशन में पूर्ण किया गया है ।

मेरी जानकारी के अनुसार-

1. यह शोधार्थी का मौलिक कार्य प्रतीत होता है ।
2. यह लघु-शोध कार्य यू.जी.सी. के दिशा निर्देशों को पूरा करता है ।
3. विश्वविद्यालय की एम.फिल.से सम्बन्धित अध्यादेश की आवश्यकताओं को पूरा करता है।

स्थान..........   हस्ताक्षर

दिनांक.........   शोध निर्देशक

हस्ताक्षर

विभागाध्यक्ष

॥ कृतज्ञता-ज्ञापन ॥

सर्वप्रथम मैं परमपिता परमेश्वर को नमन एवं वन्दन करता हूँ जिनकी कृपा, दया एवं आशीर्वाद से ही मैं इस एम.फिल.लघु शोध-प्रबन्ध को पूर्ण करने में सफल हुआ हूँ ।

प्रस्तुत एम.फिल.लघु शोध- प्रबन्ध अत्यन्त परिश्रम एवं संलग्न का कार्य है। जिस के लिए एक निश्चित योजना एवं मार्गदर्शन की अत्यन्त आवश्यकता होती है। इस एम.फिल.लघु शोध-प्रबन्ध का कार्य स्वयं के सामर्थ्य से पूर्णता को प्राप्त नही हो पाता। अतः इस एम.फिल.लघु शोध-प्रबन्ध कार्य हेतु मेरे शोध-निर्देशक एवं विभागाध्यक्षः , संस्कृत भाषा एवं साहित्य विभाग परमादरणीय श्रद्धेय गुरुवर **डॉ. देवेन्द्र सिंह सर** का सानिध्य व आशीर्वाद सदैव मुझे प्राप्त हुआ है। जिससे मेरा एम.फिल.लघु शोध-प्रबन्ध सुगमता पूर्वक पूर्ण हो सका । ऐसे श्रध्येय गुरु चरण को मैं कृतज्ञ भाव से कोटि-कोटि नमन करता हूँ ।

परमादरणीय **डॉ. विश्वबन्धु सर** का मेरे शोध कार्य की पूर्ति में महनीय सहयोग रहा है । इसी क्रम में वैकल्पिक शिक्षा विभाग के विभागाध्यक्ष परमादरणीय **डॉ. प्रभाकर पाण्डेय सर** का तथा विश्वविद्यालय के समस्त शिक्षकों को भी धन्यवाद व सादर प्रणाम करता हूँ ।

मेरे परम पूज्य श्रद्धेय पिता- **श्री श्रवण सिंह** माता- **श्रीमती केरा बाई** जी के चरणों में सादर प्रणाम करता हूँ । तथा परमादरणीय पूज्य श्रद्धेय गुरुवर **स्वामी ऋतस्पति परिव्राजक जी, आचार्य सत्यसिन्धु जी, आचार्य योगेन्द्र याज्ञिक जी, आचार्य उमेश कुमार जी,** सहित समस्त गुरुजनों के चरणों मे करबद्ध प्रणाम करता हूँ ।

तथा गणमान्य मित्रों में **आशीष कुमार, अजीत, विकास आर्य, संजय शाक्या, ऋषिकान्त शर्मा, दीपक तिवारी, नितिन कुमार गावकरे, चारु सिंह, संदीप, कल्लू शर्मा, राजेश रंजन त्रिपाठी, धुरन्धर शर्मा, रणजीत आर्य, प्रतीक आर्य, कमलेश अहिरवार, दिग्विलास कनाडिया ,** आदि समस्त प्रिय मित्रों को धन्यवाद ज्ञापित करता हुँ । जिनके सहयोग से यह लघु शोध-प्रबन्ध सम्पन्न हो सका ।

साँची विश्वविद्यालय में ग्रन्थालय के **हरीश असाटी जी** एवं **प्रकाश मुकाती जी** महोदय का मुझे ग्रन्थ उपलक्ष्य कराने में महनीय सहयोग प्राप्त हुआ है। अतः ग्रन्थालय सहित विश्वविद्यालय परिवार के प्रत्येक सदस्य को आभार ज्ञापित करता हूँ, जिन्होंने मुझे प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से सहयोग प्रदान किया ।

धन्यवाद

दीपक आर्य

(एम.फिल.– वैदिक अध्ययन)

साँ.बौ.भा.ज्ञा.अ.वि.साँची,रायसेन

संकेताक्षरसूची

आर॰	आरण्यक
उ॰	उपिनषद
ऋ॰वे॰	ऋग्वेदसंहिता
ऋ॰भा॰	ऋग्वेदभाष्यभूमिका
ऐ॰आर॰	ऐतरेय आरण्यक
ऐ॰ब्रा॰	ऐतरेय ब्राह्मण
कठ॰ उप॰	कठोपिनषद
कौषी॰उप॰	कौषितकि उपिनषद
गृ॰ सू॰	गृह्यसूत्र
गो॰ब्रा॰	गोपथ ब्राह्मण
मैत्रा॰आ॰	मैत्रायणीय आरण्यक
केन॰उप॰	केनोपिनषद्
तै॰आर॰	तैत्तिरीय-आरण्यक
तै॰उप॰	तैत्तिरीय उपिनषद्
छा॰उप॰	छान्दोग्योपिनषद्

नि०	निरुक्त
मनु०	मनुस्मृति
पा०शि०	पाणिनीय शिक्षा
बृह०उप०	बृहदारण्यक उपिनषद
तै०त्ति०	तैत्तिरीय ब्राह्मण
न्याय०द०	न्यायदर्शन
पार०गृ०	पारस्कर गृहसूत्र
महा०	महाभारत
महा० भा०	महाभाष्य
यजुः०	यजुर्वेद संहिता
शत०ब्रा०	शतपथ ब्राह्मण
सा०वे०	सामवेद
श्वेता०उप०	श्वेता श्वतर उपिनषद्
बौ०ध० सू०	बौधायन धर्मसूत्र
शां०आ०	शांखायन आरण्यक
मु०उप०	मुण्डकोपिनषद्
मा०उप०	माण्डक्योपिनषद्

अं० नि०	अंगुत्तरनिकायपालि
उ० प०	उदानपालि
खु० पा०	खुद्दकपालि
गं० वं०	गन्धवंसो
दी० नि०	दीघनिकाय
ध० प०	धम्मपद
सु० नि०	सुत्तनिपात
श०क०द्रु०	शब्दकल्पद्रुम
अ०को०	अमरकोश
आ०वा०	आप्तेवामन
पा०हि०को०	पालि हिन्दी कोश

विषयानुक्रमणिका

	पृ.सं
➢ घोषणा-पत्र	
➢ प्रमाण-पत्र	
➢ सर्वाधिकार	
➢ कृतज्ञता-ज्ञापन	2-6
➢ संकेताक्षर-सूचि	7-9
प्रस्तावना-:	10-18
प्रथम अध्याय- : वैदिक शिक्षा प्रणाली	19-56
१.१ वैदिक शिक्षा का प्रारूप	
१.२ वैदिक शिक्षा का उद्देश्य	
१.३ वैदिक शिक्षा व्यवस्था	
१.४ वेद में नारी शिक्षा	
१.५ वैदिक कालीन गुरुकल शिक्षा प्रणाली	
१.६ वैदिक शिक्षा की वर्त्तमान शिक्षा प्रणाली में उपादेयता	
द्वितीय अध्याय- : बौद्ध शिक्षा प्रणाली	57-111
२.१ बौद्ध शिक्षा प्रणाली का प्रारूप	
२.२ बौद्ध शिक्षण का उद्भव	
२.३ मुख्य शिक्षण केन्द्र	
२.४ बौद्ध विद्या-केन्द्रों पर मुस्लिम आक्रमण	

तृतीय अध्याय- : वैदिक एवं बौद्ध शिक्षा प्रणाली का

तुलनात्मक विवेचन 112-119

३.१ बौद्ध एवं ब्राह्मणीय शिक्षा प्रणाली

३.२ वैदिक एवं बौद्ध शिक्षा प्रणाली में समानताएं

३.३ वैदिक एवं बौद्ध शिक्षा प्रणाली में असमानताएं

उपसंहार-: 120-124

संदर्भ ग्रंथ सूची-: 125-129

परिशिष्ट-:

प्रस्तावना

वैदिक शिक्षा-प्रणाली की विशेषता थी गुरुकुल की प्रणाली। छात्रों को शिक्षा के पूरे काल के लिए शिक्षक और उनके परिवार के साथ रहना आवश्यक था। कुछ गुरुकुल एकांत वन-क्षेत्रों में होते थे, लेकिन सिद्धांत एक ही था- विद्यार्थियों को गुरु (शिक्षक) / गुरु और उनके परिवार के साथ रहना होता था। यह प्रणाली लगभग 2500 वर्षों तक यथावत् चलती रही। पाठशालाओं तथा शिक्षण संस्थाओं का विकास बहुत बाद में हुआ।

शिक्षा के उद्देश्य का पहला उल्लेख ऋग्वेद के 10 वें मंडल में पाया जाता है। इस मंडल के एक सूक्त में कहा गया है कि विद्या का उद्देश्य वेदों तथा कर्मकांड के ज्ञान के अतिरिक्त समाज में सम्मान प्राप्त करना, सभा-समिति में बोलने में सक्षम होना, उचित-अनुचित का बोध आदि है। इससे प्रतीत होता है पूर्व वैदिक युग में शिक्षा के उद्देश्य व्यावहारिक थे। बाद में, उपनिषद काल में, ज्ञान का उद्देश्य अधिक सूक्ष्म हो गया। विद्या को दो भागों में बांटा गया- परा विद्या और अपरा विद्या। अपरा विद्या मे प्रायः समस्त पुस्तकीय तथा व्यावहारिक ज्ञान आ गया। केवल ब्रह्म विद्या को परा विद्या माना गया। परा विद्या श्रेष्ठ मानी गई क्योंकि उससे मोक्ष प्राप्त होता है। मोक्ष शिक्षा का अंतिम उद्देश्य हो गया। लेकिन यह लक्ष्य आदर्श ही रहा होगा, न की व्यावहारिक, क्योंकि मोक्ष सभी के लिए साध्य नहीं हो सकता।

इतिहासकार **ए.एस.अल्तेकर** ने वैदिक शिक्षा के व्यावहारिक उद्देश्य बताये हैं जो निम्नलिखित हैं - सत्यवादिता, संयम, व्यक्तिगत शील, सफाई, शांत स्वभाव और उदारता आदि अच्छे चरित्र के गुण किसी भी पेशे – पुरोहित, शिक्षक, चिकित्सक, राजसेवक, व्यापारी या सैनिक - के लिए बुनियादी आवश्यकता के रूप में प्राचीन ग्रंथों में निर्धारित किये गए हैं। शिक्षा का उद्देश्य इन गुणों का विकास करना था।

मनुस्मृति में कहा गया है कि निर्मल चरित्र का ब्राह्मण सभी वेदों का ज्ञान रखने वाले दुश्चरित्र ब्राह्मण से अच्छा होता है। शिक्षा आरम्भ करने के पूर्व "उपनयन संस्कार" होता था जिसमें भावी विद्यार्थी को नैतिक आचरण के नियमों का पालन करने का उपदेश दिया जाता था। इसी तरह शिक्षा के समापन पर भी गुरु उपदेश देता था। प्रत्येक शिक्षार्थी को आत्मनिर्भरता, आत्म - संयम और जीवन में वर्ण और आश्रम के अनुरूप आचरण करने का कौशल सिखाया जाता था। विद्यार्थी भिक्षा मांगकर और शारीरिक श्रम करके अपना और गुरु के परिवार का भरण-पोषण करते थे। इससे आत्म-निर्भरता उत्पन्न होती थी। संयम विद्यार्थी-जीवन ही नहीं समस्त जीवन का अनिवार्य अंग था और शिक्षा जीवन में इस पर बहुत बल दिया जाता था। अपने वर्ण **[ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र]** से सम्बंधित कार्य कुशल ढंग से कर पाने की सामर्थ्य शिक्षा द्वारा दी जाती थी। साथ ही यह भी सिखाया जाता था कि विभिन्न आश्रमों **[गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास]** में किस तरह आचरण करना होगा। **अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य सूक्त में कहा गया है कि** गुरु शिक्षार्थी को दुबारा जन्म देता है, अर्थात् उसका मानसिक , नैतिक और आध्यात्मिक कायाकल्प कर देता है।

शिक्षा को गृहस्थ जीवन की भूमिका माना जाता था। गृहस्थ के अतिरिक्त सभी अन्य आश्रमों वाले व्यक्ति अपनी भौतिक आवश्यकताओं के लिए गृहस्थ पर निर्भर होते थे। इस तरह गृहस्थ न केवल अपने परिवार बल्कि अन्य वर्णों का भी पालन करता था। गुरु शिक्षार्थी को समाज में अपनी यह भूमिका निभाने में सक्षम बनाता था। इसके अतिरिक्त समाज को चलाने के लिए आवश्यक राजसेवक, न्यायाधीश, व्यापारी, पुरोहित तथा अन्य कुशल व्यक्ति गुरुकुलों द्वारा ही तैयार किये जाते थे।

आरम्भ में आर्यों को लिपि का ज्ञान नहीं था। समाज के सामने चुनौती थी की किस तरह मौखिक रूप से पीढ़ी-दर-पीढ़ी वेदों को अपने मूल रूप में सुरक्षित रखा जाय। भारत के

प्राचीन गुरुकुलों की यह विलक्षण उपलब्धि थी कि वैदिक साहित्य लगभग दो हजार साल तक मौखिक रूप में जीवित ही नहीं, अक्षुण्ण भी रखा।

वैदिक शिक्षा व्यापक सांस्कृतिक दृष्टि पर बल देती थी। शिक्षित व्यक्ति को साहित्य, कला, संगीत आदि की समझ होनी चाहिए। उसे जीवन के उच्च आदर्शों का ज्ञान भी होना चाहिए। मात्र जीविकोपार्जन शिक्षा का उद्देश्य नहीं है। कालिदास ने कहा है कि जो विद्या का उपयोग केवल कमाई के लिए करते हैं वे विद्या के व्यापारी हैं जिनकी विद्या बिकाऊ माल भर है। पूर्वजों की परंपरा और संस्कृति की रक्षा शिक्षित व्यक्ति का कर्तव्य थाचूँकि एक ही व्यक्ति विद्या की सभी शाखाओं में निष्णात नहीं हो सकता था, अतः वैदिक ज्ञान की विभिन्न शाखाओं में विशेषज्ञता का विकास हुआ। साथ ही समस्त देश में कुछ ऐसे आधारभूत मूल्यों की स्थापना हुई जो आज भी सांस्कृतिक एकता के आधार हैं।

बौद्धों का सबसे बड़ा योगदान था आधुनिक विश्वविद्यालयों जैसे बड़े शिक्षा संस्थानों की स्थापना जिन्होंने चीन, तिब्बत, कोरिया और दुनिया के कई अन्य हिस्सों के छात्रों को आकर्षित किया। बौद्ध शिक्षा विहारों से आरम्भ हुई थी जिनमें नए भिक्षुओं को धम्म **[धर्म अर्था बौद्ध धर्म]** की शिक्षा दी जाती थी। धीरे धीरे बड़े महाविहारों की स्थापना हुई जिनमें उच्च शिक्षा दी जाती थी। प्राथमिक शिक्षा विहारों में दी जाती थी। कालक्रम में भिक्षुओं के अलावा सामान्य बौद्ध मतावलंबी भी इन शिक्षा संस्थानों में प्रवेश पाने लगे।

आधुनिक पटना से लगभग 60 किलोमीटर दक्षिण में स्थित नालंदा प्राचीन भारत में शिक्षा का सबसे बड़ा केंद्र था । 5 वीं शताब्दी ई। तक नालंदा एक बौद्ध विश्वविद्यालय के रूप में प्रसिद्ध हो गया था । इस विश्वविद्यालय में 7 बड़े हॉल और 300 कमरे थे। इसके अतिरिक्त एक विशाल पुस्तकालय था। 7 वीं शताब्दी में ह्वेन त्सांग की यात्रा के समय विश्वविद्यालय में 1500 शिक्षक और 8500 छात्र थे। 1193 में मुस्लिम आक्रमणकारी बख्तियार खिलजी ने नालंदा को नष्ट कर दिया और इमारतों में आग लगा दी।

वल्लभी आधुनिक काठियावाड़(गुजरात) में और विक्रमशिला बिहार में (संभवतः भागलपुर जिले में) दो अन्य महत्वपूर्ण बौद्ध विश्वविद्यालय थे । 6000 शिक्षकों और छात्रों के साथ, वल्लभी नालंदा के बाद सबसे बड़ा संस्थान था। विक्रमशिला तीसरा महत्वपूर्ण संस्थान था। इनमें वल्लभी हीनयान सम्प्रदाय का विश्वविद्यालय था जबकि बाकी दोनों महायान सम्प्रदाय के। **[हीनयान और महायान बौद्ध धर्म के दो सम्प्रदाय थे]** बौद्ध धर्म के मूल तत्त्व चार आर्य सत्य हैं जिन्हें गौतम बुद्ध ने स्वयं प्रतिपादित किया था। ये आर्य सत्य हैं:-

१) दुःखः जीवन दुःखमय है। जन्म, जरा, मरण, सभी दुःख देने वाले हैं। प्रिय से बिछुड़ना दुःख देता है और अप्रिय से मिलना। जो प्राप्त है उसको खोने का भय दुःख देता है। इस तरह दुःख जीवन का एकमात्र सत्य है।

२) दुःख समुदय:- दुःख का कारण अज्ञान और तृष्णा है।

३) दुःख निरोध:- दुःख के कारण को हटा देने से दुःख भी हट जाएगा।

४) अष्टांगिक मार्ग: यह आठ ज्ञान और सदाचार के सिद्धांत हैं जिनके द्वारा दुःख के कारणों अर्थात् अज्ञान और तृष्णा को समाप्त किया जा सकता है, जैसा भगवान् बुद्ध ने स्वयं किया। इस मार्ग के आठ अंग ये हैं:-

- **सम्यक दृष्टि** – अर्थात चार आर्य सत्यों को हृदयंगम करना।
- सम्यक संकल्प – अर्थात लोभ, मोह, अहंकार आदि से मुक्ति का संकल्प।
- **सम्यक वाक्** – अर्थात सत्य बोलना और कठोर वाणी का परित्याग।
- **सम्यक कर्मान्त** – अर्थात सत्य, अहिंसा,ब्रह्मचर्य इत्यादि पांच शीलों का पालन। भिक्षु के लिए शीलों की संख्या दस है।
- **सम्यक आजीव** – अर्थात जीविका का नैतिक साधन।
- **सम्यक व्यायाम** – अर्थात अच्छे विचारों को धारण करना और बुरे विचारों को दूर करना।

- **सम्यक स्मृति** – शरीर, इन्द्रिय और मन के वास्तविक स्वरुप का ध्यान करना और किसी प्रकार की आसक्ति से दूर रहना।
- **सम्यक समाधि** – अर्थात निर्वाण प्राप्त करने की प्रक्रिया। इसके पहले के सात कदम सम्यक समाधि की तैयारी भर हैं।

बौद्ध शिक्षा का अंतिम उद्देश्य निर्वाण की प्राप्ति है। निर्वाण की स्थिति में आसक्ति, अज्ञान और तृष्णा का विलय हो जाता है और मनुष्य दुःख से मुक्त हो जाता है। बौद्ध धर्म एक व्यावहारिक धर्म है क्योंकि उसका उद्देश्य मानव जीवन के दुःख को दूर करना है। व्यावहारिकता पर बल देने के कारण इस धर्म में आचरण का बड़ा महत्त्व है। बौद्ध शिक्षा का उद्देश्य धर्म के अनुयायियों में नैतिक आचरण का विकास करना है। प्राचीन काल में बौद्ध शिक्षा का एक और उद्देश्य धर्म प्रचार करने के लिए भिक्षुओं को प्रशिक्षित करना था।

विनय पिटक, सुत्त पिटक और अभिधम्म पिटक ये तीन बौद्ध धर्म के मूल ग्रन्थ हैं। माना जाता है कि ये बुद्ध के वचनों के संग्रह हैं। विनय पिटक यह बौद्ध संघ को चलाने के नियमों का सग्रह है। भिक्षुओं द्वारा किन नियमों का पालन किया जाना चाहिए इसका भी वर्णन है। नियमों के उल्लंघन पर किन उपायों का अवलंबन करना चाहिए इसका निर्देश है। सुत्त पिटक यह सूत्रों अर्थात भगवान् बुद्ध के उपदेशों का संग्रह है। यह पिटक पाँच निकायों में बांटा गया है :

- **दीर्घ निकाय**
- **मध्यम निकाय**
- **संयुक्त निकाय**
- **अंगुत्तर निकाय**
- **क्षुद्र निकाय**
- **अभिधम्म पिटक**

यह पिटक हीनयान का प्रमुख ग्रन्थ है। इसमें बौद्ध धर्म के मूलभूत सिद्धांतों की चर्चा है जो भगवान् बुद्ध ने स्वयं स्थापित किये। इनमें प्रमुख प्रतीत्य समुत्पाद का सिद्धांत है जिसके आधार पर बुद्ध द्वारा प्रतिपादित चार आर्य सत्यों की व्याख्या की जाती है। अन्य बौद्ध ग्रंथों में बुद्धघोष का विशुद्धमार्ग और नागसेन का मिलिंद प्रश्न प्रमुख थे। इसके अतिरिक्त परवर्ती काल के बौद्ध दर्शनों के ग्रन्थ भी इस श्रेणी में आते हैं। बौद्ध विश्वविद्यालयों में वैदिक वांमय की शिक्षा भी दी जाती थी। साथ ही सांख्य आदि छः दर्शनों की शिक्षा भी दी जाती थी।

जैसा कि वैदिक शिक्षा के संबंध में बताया गया है, लगभग सभी महत्वपूर्ण धर्मनिरपेक्ष विषयों को भी बौद्ध शिक्षण संस्थानों में सिखाया जाता था। भिक्षुओं को भी कुछ उपयोगी कलाओं की शिक्षा दी जाती थी, जैसे सिलाई और काष्ठ कला। शिक्षक सदा ही बौद्ध भिक्षु होते थे। वे विद्वान और सदाचारी होते थे। उनसे आशा की जाती थी की छात्र के मानसिक और नैतिक विकास के लिए सतत प्रयत्नशील रहेंगे। शिक्षक अविवाहित सन्यासी होते थे जो शिक्षण के लिए पूरी तरह समर्पित होते थे। पठन पाठन के समय के बाहर भी शिक्षक छात्रों की शारीरिक, मानसिक और नैतिक आवश्यकताओं का ध्यान रखते थे। बदले में छात्र शिक्षक की आज्ञा का पालन करते थे और उस पर पूर्ण श्रद्धा रखते थे।

बौद्ध शिक्षा ने एक बहुत बड़ा सुधार यह किया कि वर्ण और लिंग का बंधन हटा दिया। स्त्रियों और शूद्रों को शिक्षा का अधिकार दिया। शिक्षार्थी दो प्रकार के होते थे – भिक्षु और उपासक। भिक्षु आजीवन सन्यासी जीवन बिताने वाले बौद्ध श्रमण होते थे। उपासक बौद्ध धर्म के वे अनुयायी थे जो गृहस्थ जीवन व्यतीत करते थे। भिक्षु छात्रों को शिक्षारम्भ के पूर्व एक संस्कार से गुजरना होता था जिसे **'पबज्जा' या प्रब्रज्या** कहते थे।

छात्रों को धर्म के सभी नियमों का पालन करना होता था। विशेषतः नैतिक आचरण के नियमों पर बल दिया जाता था। तीन प्रकार के दैहिक, चार प्रकार के वाचिक और तीन प्रकार के मानसिक पापों से बचना होता था। **पाप ये थे:- दैहिक पाप: हत्या, चोरी और**

व्यभिचार वाचिक पापः- झूठ बोलना, परनिंदा, कठोर वचन और व्यर्थ बोलना। मानसिक पापः लालच, नफरत और तत्व-ज्ञान में त्रुटि।

भगवान् बुद्ध ने पहली बार संस्कृत की अपेक्षा पालि और प्राकृत को स्वीकार किया। बौद्ध धर्म के मूल ग्रन्थ पालि भाषा में हैं। अतः बौद्ध शिक्षा में पालि का प्रयोग अनिवार्य था। प्रारम्भ में बौद्ध शिक्षा में मागधी प्राकृत का भी व्यवहार हुआ जो अपने आप में नयी बात थी। लोकभाषा को संस्कृत से अधिक महत्त्व देने के कारण शिक्षा सर्वसुलभ हुई और साथ ही लोक भाषाओं को बढ़ने का अवसर मिला। परन्तु बाद में महायान सम्प्रदाय ने संस्कृत को अपना लिया। विहारों और महाविहारों में शिक्षा गुरुकुलों की तरह मौखिक होती थी। व्याख्यान के अलावा प्रश्नोत्तर और शास्त्रार्थ पर बल दिया जाता था।

साधारणतः शिक्षकों और छात्रों का अनुपात ऐसा था की एक शिक्षक को पांच या छः छात्रों से अधिक का उत्तरदायित्व नहीं लेना होता था। बौद्ध ग्रंथों से अनुशासन के विषय में जानकारी मिलती है। विशेषतः भिक्षुओं से संबंधित अनुशासन का उल्लेख त्रिपिटक में भी मिलता है। शिक्षार्थी स्वेच्छा से नियमों का पालन करते थे। बौद्ध धर्म मूलतः नैतिक आचरण पर आधारित था। अतः अनुशासन दैनिक जीवन का अंग था। परन्तु नियमों का उल्लंघन भी कभी कभी होता था। इसके लिए दोषी शिक्षार्थी को शिक्षक द्वारा अथवा अन्य वरिष्ठ शिक्षार्थियों द्वारा उचित मार्गदर्शन देने का प्रयास किया जाता था। इसका प्रभाव न हो तो उपवास आदि का दण्ड दिया जाता था। एक जातक कथा में शारीरिक दण्द का भी उल्लेख है।

प्रथम अध्याय
वैदिक शिक्षा प्रणाली

वैदिक शिक्षा का प्रारूप-

वेद का शुद्ध एवं शाब्दिक अर्थ ज्ञान है। वेद शब्द विद् धातु से घञ् प्रत्यय करने पर प्राप्त होता है । विद् का अर्थ जानना होता है । अर्थात् समानता में जब विद् आता है तब अर्थ जानने वाला होता है । जैसे **वेदविद्**– अर्थात् वेद जानने वाला, **शास्त्रविद्** – अर्थात् शास्त्र जानने वाला। वेद सम्पूर्ण विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ है । अत: वेद में समस्त विद्याएं प्राप्त हैं।

वैदिक शिक्षा में भारतीय शिक्षा का उद्धार सर्वोपरि माना गया है क्योंकि वेद परमात्मा का दिया हुआ ज्ञान है। वेद प्राचीन काल में लिपिबद्ध न रहकर केवल श्रुति परम्परा में ही प्रचलित थे। इसीलिए वेद को श्रुति कहा गया है। बहुत समय पश्चात् लिपिबद्ध कर लिए गये थे।

आचार्य सायण के मतानुसार वेद **"इष्टप्राप्त्यनिष्टपरिहारयोलौकिकमुपायं यो ग्रन्थों वेदयति स वेद:।**[1] वह होता है जिससे इष्ट प्राप्ति तथा अनिष्ट को दूर करने वाला अलौकिक उपायों को बताने वाला ग्रंथ । वेद प्राचीनतम ज्ञान है। वेद में समस्त विद्याओं से परिपूर्ण है। वेद शब्द विद् सत्तायाम् धातु से घञ् प्रत्यय होने पर सिद्ध होता है। संस्कृत व्याकरण में वेद को चार धातुओं से भिन्न-भिन्न अर्थो की निष्पत्ति होती है। **"विदन्ति जानन्ति विद्यन्ते भवन्ति विन्दन्ति विन्दन्ते लभन्ते,विन्दन्ते विचारयन्ति सर्वे मनुष्या: सर्वा: सत्यविद्या: यैर्येषु वा तथा विद्वाशश्च भवन्ति वेदा:।"**[2] वेद शब्द की व्युत्पत्ति आचार्य विष्णुमित्र के मतानुसार - **"विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभ्यन्ते वा एभिर्धमा दि पुरुषार्थां इति वेदा:।"**[3]

---

१ तैत्तरीय भाष्य भूमिका, सम्पादक बलदेव उपाध्याय पृष्ट सं.२

2 ऋग्वेदभाष्यभूमिका, युधिष्ठिर मीमांसक, पृ.२२

3 ऋग्वेद, प्रातिशाख्य. सम्पादक. मंगलदेव शास्त्री, इडियन प्रेस लिमिटेड पृ.५

वेद को भारतीय वैदिक शिक्षा का मुख्य स्त्रोत माना जाता है। प्राचीन काल के प्रारंभ में केवल वेद ही उपलब्ध थे उनको चार भागो विभक्त किया गया है चार ऋषियों के माध्यम से उनके नाम इस प्रकार से प्राप्त है ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद ।

ऋग्वेद को ज्ञान विषय एवं पद्य रूप में माना गया है, "ऋग्वेद" **ऋच्यते स्तूयतेऽनया इति ऋक्"**[4]**-** अर्थात् वे मंत्र जिनमे देवताओं की स्तुति की गई हो उसे ऋक् कहते हैं।

यजुर्वेद को कांड विषय गद्य रूप में प्रस्तुत किया गया है तथा यजुर्वेद -**यजुर्यजतेः**[5] अर्थात् यज्ञ से संबंध मंत्र हो उसे यजुष कहते हैं। **इत्यतेंऽनेनेति यजुः**-अर्थात् जिन मंत्रों के द्वारा यज्ञ किया जाता हो उन्हे यजुष कहते है। **अनियतक्षरावसानो यजुः-**जिन मंत्रों के पद्यों में अक्षर संख्या निर्धारित न हो उन्हें यजुष कहते हैं।

सामवेद -**गीतिषु सामाख्या-**[6] अर्थात् जिन मंत्रों को गायन रुप में गाया जाता हो उन्हें साम कहते हैं। **आंगुप्यं साम**-[7] अर्थात् स्तोत्र या गीतिरूप मंत्रों को ऋग्वेद में साम कहा गया है ।

सामवेद को उपासना विषय एवं गायन रूप में तथा इन तीनों वेदों की प्राप्ति को त्रिविद्या के रूप में स्वीकार किया गया है। जो इन वेदों को अध्ययन के रूप में स्वीकार करते है। उन्हें **द्विज** अर्थात् कहा जाता है। ऋषियों ने इन्हें चार संहिता के रूप में प्रतिपादन किया है जिससे समस्त प्रजा सम्यक् रुप से वेद ज्ञान को धारण कर सके। वैदिक काल में वेदों का ज्ञान प्रजा जनों का अभिन्न अंग के रूप में प्राप्त था जिसके माध्यम से ही इन्होंने वेद की ज्योति को जगाय रखा है।

---

[4] जैमिनीयन्यायभाष्य. २/१/१२

[5] निरुक्त. ७/१२

[6] पूर्वमीमांसा, २/१/३६

[7] ऋग्वेद,१/६२/२

वैदिक शिक्षा का उद्देश्य -

प्राचीन कालीन शिक्षा के उद्देश्य को दो पहलुओं में विभक्त किया गया है।(पराविद्या एवं अपराविद्या) । परा विद्या अर्थात् ज्ञान की प्राप्ति वताया गया है। कर्म एवं उपासना के माध्यम से ब्रह्मत्व की प्राप्ति एव मोक्ष को प्राप्त कर लेना, तथा अपरा विद्या से यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक कार्यों की व्यवस्थाएं आदि प्राप्त करना[६] अर्थात् परा विद्या से अलौकिक ज्ञान की प्राप्ति तथा अपरा विद्या के माध्यम से केवल लौकिक सुख की प्राप्ति माना गया है किंतु परा एवं अपरा दोनों विद्याओं को वैदिक काल में सबसे श्रेष्ठ विद्याओं के रुप में माना जाता है। वैदिक काल में इन दोनों विद्याओं के माध्यम से ही छात्रों को शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विद्याओं के साथ-साथ मोक्षमार्ग की शिक्षा भी दी जाती है। जिससे छात्र अपने इस साधारण जीवन में उच्च विचारों के माध्यम से अपना सर्वांगीण विकास कर सके।

शिक्षा शब्द को संस्कृत भाषा में देखा जाए तो शिक्षा शब्द "शिक्ष" धातु से "अ" प्रत्यय लगने से सिद्ध होता है। सबसे पहले जो शिक्षा शब्द दिखाई देता है वह विश्व की सबसे प्रथम प्राचीन पुस्तक ऋग्वेद से लिया गया है, यानि कि ज्ञान के माध्यम से स्वयं के जीवन पर शासन करना ही शिक्षा है । केवल पुस्तक रुपी ज्ञान को शिक्षा नहीं कहा गया है कि ऋग्वेद के सातवें मंडल में कहा है कि आंतरिक और बाह्य अज्ञान को दूर करने और ज्ञान की और अग्रसर होने की प्रक्रिया को शिक्षा कहा गया है।

ऋग्वेद के दसवें मंडल के १०९ वें सूक्त में ब्रह्मचारी शब्द का वर्णन किया गया है। प्राचीनकाल मे जो विद्यार्थी गुरुकुल मे आचार्य की छत्र छाया मे रहकर शिक्षा ग्रहण करते थे उनके लिए ब्रह्मचारी शब्द का प्रयोग किया गया है। और इसका सामान्य जगत मे अर्थ होता है शिक्षा ग्रहण करने वाला या शिक्षार्थी या विद्यार्थी। वैदिक काल में शिक्षा शास्त्रियों ने बालक को शिक्षा का केंद्र माना है कि शिक्षा का वैदिक विचारधारा में बालक को इतना महत्वपूर्ण

---

६ मुण्डकोपनिषद् १/१/२

स्थान प्रदान किया गया है कि उसी के जन्म सुधार के लिए सोलह संस्कारों की कल्पना की गई है।

देखा जाता कि बालकों को परिवार में विद्यारंभ संस्कार और गुरुकुल में उपनयन संस्कार के पश्चात् ही भिन्न-भिन्न विषयों के संदर्भ में दिया जाने वाला ज्ञान एवं कला कौशल को शिक्षा के रूप में स्वीकार किया गया है। यहां हमने शिक्षा के संकुचित अर्थ को ही समझा है किंतु शिक्षार्थी शिष्य अपनी शिक्षा गुरुकुल से समाप्त कर लेने के पश्चात् जब समावर्तन संस्कार अर्थात् दीक्षांत समारोह होता था तो तब गुरु शिष्य को उपदेश के माध्यम से समझाते थे कि "**स्वाध्यायान्या प्रमदः"**[9] अर्थात् स्वाध्याय में कभी भी आलस्य न करना इसी स्वरूप को शिक्षा का व्यापक अर्थ माना जाता है। महाकवि मैथिलीशरण गुप्त जी ने भी वेदों को ज्ञान का सागर कहा है। इस संदर्भ **में वह अपनी पुस्तक भारत भारती के प्राचीन शिक्षा प्रणाली में पद्य के माध्यम से कहते हैं कि –**

विख्यात चारों वेद मानो चार मुख सार हैं ,
चारों दिशाओं के हमारे वे जय- ध्वज चार हैं ।
वे ज्ञान गरिमागार हैं, विज्ञान के भंडार हैं,
वे पुण्य पारावार हैं, आचार के आधार है॥[10]

वैदिक कालीन शिक्षा का उद्देस्य यदि गम्भीर रुप से देखा जाये तो शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य वह होता है जिसमें अविद्यादि बंधनों से मुक्ति दिलाने का कार्य हो ।"**सा विद्या या विमुक्तये"**[11]**-**अर्थात् विद्या उसी को कहते हैं जो मुक्ति, मोक्ष, विभिन्न प्रकार के अविद्यादि बंधनों एवं क्लेशों से छुड़ाती है। जीवात्मा अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष एवं अविनिवेश इन पांच प्रकार के क्लेशों से अनेक जन्म जन्मांतरों के कर्मों से संस्कारवश कैदी बना हुआ है। जीव

---

[9] तैत्तिरियोपनिषद(प्राप. ७.अनु.११)
[10] भा.भा.अतीत.८६
११ छान्दोग्योपनिषद् २.२

अविद्या आदि के घोर अंधकार में पढ़कर पथभ्रष्ट हो रहा है उसे सन्मार्ग पर लाने के लिए शिक्षा -विद्या की अत्यधिक आवश्यकता है ।

बृहदारण्यकोपनिषद् में मंत्र के माध्यम से कहा है।"**असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्मामृतम गमय "**[12] । अर्थात् असत्य से सत्य की ओर अंधकार से प्रकाश की ओर एवं मृत्यु से अमरत्व की ओर ले जाए वही शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य होता है। यजुर्वेद में स्पष्ट रूप में कहा है –"**विद्ययामृत्मश्नुते"**[13] अर्थात् विद्या से अमृत, अमरणभाव, जन्म- मरण के बंधन से रहित ,परमानंद मोक्ष की प्राप्ति होती है और नित्य आनंद की प्राप्ति हो जाती है। अमरत्व एवं मोक्ष की प्राप्ति करना ही शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य है। इसके अंतर्गत बताया गया है कि ऋग्वेद में प्राचीन भारत की जो शिक्षा है वह केवल पुस्तक की ज्ञान विषयक के लिए या रटन्त विद्या के लिए ना हो करके शिक्षा का अर्थ उनके लिए व्यापक था जिनके अंतर्गत बताते थे कि नैतिक, चारित्रिक, शारीरिक, मानसिक रूप से मनुष्य का विकास करना और उससे व समाज का उत्तरदायी नागरिक बना देना ही शिक्षा का उद्देश्य था।

इस प्रकार दोस्तों हमने जाना कि जो प्राचीन भारत है इसके अंतर्गत शिक्षा बहुत ही व्यापक अर्थ में देखी जाती है। केवल गुरुकुलों और आश्रमों में जाकर के विद्या ग्रहण करना ही नहीं वहाँ पर जो अध्यापन का केंद्र होता है वह मुख्य रूप से आत्मिक विकास करना होता है वहाँ सारी चीजों तक पहुंचने के लिए जो अनुशासन चारित्रिक और सदाचारी होता है वही नैतिक चारित्रिक विकास के अंतर्गत आता है और इस प्रकार शिक्षा प्राचीन भारत में बहुत ही व्यापक रूप में हुआ करती थी।

वैदिक शिक्षा व्यवस्था -

प्राचीन समय में शिक्षा निःशुल्क दी जाती थी। शिक्षा के साथ-साथ पठन की सामग्री तथा आवास वस्त्र आदि एवं भोजन आदि की व्यवस्था भी हुआ करती थी। इस संदर्भ में

---

[12]बृहदारण्यकोपनिषद् १.३.२८

[13] यजु. ४०/१४

महाकवि राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त जी ने भी अपनी भारत भारती नामक पुस्तक में भी प्राचीन शिक्षा के विषय में फीस नामक शीर्षक के माध्यम से कहा है कि-

पढ़ते शहस्त्रों शिष्य हैं पर फीस ली जाती नहीं,
उच्च शिक्षा तुच्छ धन पर बेच दी जाती नहीं ।
दे वस्त्र भोजन भी स्वयं कुलपति बढ़ाते हैं उन्हें,
वस शक्ति से संतुष्ट हो दिन दिन बढ़ाते हैं उन्हें ।।[14]

कहा जाए तो एक साथ अनेकों शिष्यों की शिक्षा नि:शुल्क कैसे हो सकती है तो इस संदर्भ में भी मैथलीशरण गुप्त जी भारत भारती के भिक्षा नामक शीर्षक में कहते हैं कि-

है- आजकल की भांति वह भिक्षा नहीं अपमान की,
है प्रार्थनीय गृही जनों को यह व्यवस्था दान की ।
वे ब्रह्मचारी भिक्षु बनकर ऐसे प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं ,
भूपाल भी पथ छोड़ कर उन पर दिखाते भक्ति हैं।। [15]

अर्थात् शिक्षा प्राप्त करने वाले शिष्यों की व्यवस्था भली-भांति की जाती है। और वे शिष्य स्वयं ही भिक्षा दान लेने के लिए नगरों व घरों से एकत्रित करके आश्रमों में लाया करते थे। जिससे कि सभी शिष्यों की पठन-पाठन एवं आवास से लेकर भोजन वस्त्रादि तक का प्रबंध हुआ करता था । प्राचीन काल में प्रारंभिक शिक्षा की व्यवस्था परिवारों में ही हुआ करती थी। लगभग पांच वर्ष की अवस्था में किसी शुभ देखकर बालक का विद्यारंभ संस्कार किया जाता था। जिसके माध्यम से वह अपनी पठन-पाठन की क्रिया को प्रारंभ कर सके। यह संस्कार अपने ही कुल के पुरोहित व पंडित के माध्यम से हुआ करता था।

---

[14] भा.भा.अ.काल १७६

[15] भा.भा.अ.का.१७८

वैदिक शिक्षा नैतिक चरित्र का निर्माण करना-

वैदिक शिक्षा का उद्देश्य केवल विद्यार्थियों एवं छात्रों के नैतिक चरित्र किस प्रकार से उज्जवल और अच्छे से अच्छे संस्कारों का विकास प्राप्त हो। यही वैदिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य होता था, जैसे ब्रह्मचर्य का पालन करना, सदाचारी बने रहना, परमार्थ की प्राप्ति करना, जनहित में सद्विचार रखना, परोपकारी होना, सात्विक आहार लेना, गुरु व माता-पिता एवं बड़ों का आदर करना, शुभ कर्तव्यों का पालन करना, सदा व्रतधारी बने रहना, एवं धर्म के प्रति निष्ठा बनाए रखना आदि उच्च विचारों से ही विद्यार्थी के जीवन में नैतिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य होता था जिससे छात्र संस्कारी बनकर अपने जीवन को सफल व उज्जवल बनाया जाता था।[16]

वैदिक शिक्षा से पवित्रता तथा धार्मिकता का विकास करना-

वैदिक शिक्षा से छात्रों का मुख्य उद्देश्य आर्थिक विकास करना होता था क्योंकि जिसके माध्यम से ही छात्र अपने परम लक्ष्य को प्राप्त सकें। छात्रों को अपने धार्मिक भावों से अत्यधिक सरल पवित्र तथा स्वभाविक माना जाता था। छात्रों को परम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए चित्तवृत्तियों का पूर्ण रुप से नाश करना और मन को एकाग्र बनाना । अतः वैदिक शिक्षा से पवित्रता एवं धार्मिकता का विकास करना अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है।

वैदिक शिक्षा से व्यक्तित्व का विकास करना-

वैदिक शिक्षा के अनुसार व्यक्ति के सर्वांगीण विकास पर मुख्य रुप से अत्यधिक बल दिया जाता है। शिक्षा के रूप में छात्रों का सर्वांगीण विकास एव आत्मविश्वास को जगाना, सामाजिक शिक्षा को सिखाना, नेतृत्व की शिक्षा, आत्मानुभूति, आत्मसम्मान की रक्षा, सहनशीलता का आवास एवं परोपकार की भावना आदि गुणों का विकास करना होता है। अतः छात्रों को अपने अपने कार्यों में स्वतंत्रता दी जाती है कि जिससे वे अपने उत्तरदायित्वों को भलीभांति समझ सकें और अपनी क्षमताओं के माध्यम से निर्णय लेने में प्रवीण हो सके।

---

१६ गोपथब्राह्मण १.२.१-९

वैदिक शिक्षा से सामाजिक कुशलता उन्नति करना-

वैदिक शिक्षा के माध्यम से पराविद्या तथा अपराविद्या विद्याओं के ज्ञान को धारण कराकर जिससे वे छात्र में सामाजिक जीवन की भावनाओं को विकसित करके सुयोग्य तथा धार्मिक बनाना। शिक्षार्थी, विद्यार्थी अपनी अपनी शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात गृहस्थाश्रम के कर्तव्यों की भी शिक्षा प्राप्त करते थे जिससे वे अपने सामाजिक उत्तरदायित्व को भली भांति समझकर तथा समाज व राष्ट्र को उन्नति प्रदान करा सकें। माता-पिता व गुरुजनों की सेवा सुश्रुषा,गौ सेवा, अतिथि देवो भव का पाठ, दु:खी जनों के प्रति उपकार की भावनाओं को समझ सकें। यही वैदिक शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत मुख्य रुप सामाजिक कुशल उन्नति प्राप्त करना होता है।

वैदिक संस्कृति का संरक्षण तथा प्रचार-प्रसार करना -

वैदिक शिक्षा का प्राचीनकाल से ही प्रमुख उद्देश्य संस्कृति की रक्षा करना था, क्योंकि शिक्षा के माध्यम से ही राष्ट्रीय व सामाजिक संस्कृत्तियों का संरक्षण तथा प्रचार-प्रसार करना मुख्य उद्देश्य होता तथा छात्रों को भी संस्कृति का सम्यक् ज्ञान कराके सांस्कृतिक धरोहर को भी इस पीढ़ी से उस पीढ़ी तक ज्ञान प्राप्त कराया जाता था।

वैदिक शिक्षा के द्वारा जीविकोपार्जन के लिए तैयार करना-

वैदिक शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत जीविकोपार्जन के लिए तैयार करना मुख्य उद्देश्य शिक्षा का कर्तव्य माना जाता रहा है, क्योंकि वैदिक शिक्षा को धारण करके छात्र अपना जीवन सुचारु रुप से व्यतीत करने में समर्थ हो जाते थे, जैसे- पशुपालन, कृषि, व्यवसाय, युद्ध कला, चिकित्सा आदि क्षेत्रों के रूप में निपुण हो जाते थे तथा गृहस्थाश्रम में प्रवेश के समय यह छात्र अत्यधिक योग्य बनकर भली-भांति अपना तथा परिवार समाज एवं राष्ट्र का भरण पोषण करने के योग्य सिद्ध हो जाते है। इन उदाहरणों से यह स्पष्टता होता है कि वैदिक काल की शिक्षा से

मनुष्यों का सर्वांगीण विकास, आत्मज्ञान एवं ब्रह्मज्ञान को अपने जीवन में धारण करके मोक्ष प्राप्ति का मार्ग खुल जाता जाता है।

वेद में नारी शिक्षा-

ते ध्यानयोगानुगता अपस्यन् देवात्मशक्ति स्वगुणैर्निर्गुळाम्[17]

वैदिक शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत स्त्री को पुरुष के योग्य माना जाता है। जिससे पत्नी को अर्धांगिनी के रूप मे स्वीकार किया गया है। नारी को पुरुष के समान सभी कार्यों में एक समान दर्जा प्राप्त होता है। बल क्रियाओं के करने में वैदिक शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत नारी पूर्ण विद्याध्ययन करने का अधिकार प्राप्त है। अतः माता-पिता एवं गुरुजनों के माध्यम से ही नारी घर पर ही विद्या अध्ययन करती है। तत्पश्चात गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करती है। **स इममेवात्मानं द्विधापालयत् पतिश्च पत्नी चा भवताम्**[18]

उपनयन संस्कार -

उपनयन संस्कार का प्रारंभ ब्रह्मचर्य आश्रम से होता है उपनयन का शाब्दिक अर्थ होता है उप अर्थात् समीप गुरु के समीप नयन ले जाना **(याज्ञ.व.वेदाध्ययनाय अचार्यसमीपे नयनम्०)**[19] अर्थात् आचार्य के समीप ज्ञान प्राप्त कराने के लिए ले जाना ही उपनयन संस्कार कहलाता है। आचार्य शिष्य को तीन दिन अपने गर्व में रखकर अर्थात् अपने सानिध्य मे रखकर शिष्य की परीक्षा लेकर के उपनयन संस्कार करता था। उपनयन संस्कार के समय आचार्य शिष्य के प्रति कहता है कि - **"मम व्रते ते हृदयं दधामि मम चित्तं अनुचित्तमं ते अस्तु"**[20] अर्थात् तेरे हृदय को मैं अपने हृदय में लेता हूं तेरे चित्र को मैं अपने चित्र में लेता हूं। यह शिष्य का दूसरा जन्म होता है इसलिए इसे द्विज कहा जाता है, और इस को श्रेष्ठ जन्म कहा जाता था । अतः उपनयन संस्कार के पश्चात आचार्य शिष्य को यज्ञोपवीत धारण कराता है । यज्ञोपवित

---

17 श्वेताश्वरोपनिषद् ६/८

18 बृदारण्यक.१/४/३

19 स्मृति १/१४

20 पारस्कर गृह्य सूत्र २.२.१६

के विषय में सर्वप्रथम तैतरीय ब्राह्मण में कहा गया है।[21] यज्ञोपवीत में जो तीन धागे हैं वो तीन ऋणों का प्रतीक हैं। इन तीन ऋणों से उनऋण होना हमारा कर्तव्य है। किंतु वे तीन ऋण कौन कौन से हैं वो इस प्रकार हैं-

- **ऋषि ऋण**
- **देव ऋण**
- **पितृ ऋण**

"**जायमानो ह वै ब्राह्मण**"[22] अर्थात् ब्रह्मचर्य के माध्यम से ही ऋषि ऋण, यज्ञ के द्वारा, देव ऋण और संतानोत्पत्ति करने से पितृ ऋण उतारा जाता है।

वैदिक शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत विद्याध्यन का प्रारंभ उपनयन संस्कार के पश्चात ही होता है। उपनयन का शाब्दिक अर्थ समीप ले जाना अर्थात् बालक को विद्या अध्ययन के पश्चात गुरु के समीप ले जाना उपनयन संस्कार होता है उपनयन संस्कार के बाद ही बालक को आश्रम या गुरुकुल में गुरु के पास ले जाना ही उपनयन संस्कार होता है। गुरुकुल व आश्रम में बालक को शिक्षा के माध्यम से आध्यात्मिक आधार पर उसका जन्म प्रारंभ हो जाता है। उपनयन संस्कार द्विज अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य वर्णों को ही धारण कराया जाता था। द्विज का शाब्दिक अर्थ होता है जिसका दो बार जन्म हुआ उसे द्विज कहा जाता था। ब्राह्मण बालकों का उपनयन ८ वर्ष की अवस्था के उपरांत बसंत ऋतु कालीन, क्षत्रिय वालों को का उपनयन संस्कार ११ वर्ष की आयु में ग्रीष्म ऋतु के अंतर्गत तथा वैश्य वर्ण वालों बालकों का उपनयन १२ वर्ष की अवस्था शरद ऋतु के तत्कालीन हुआ करता है। अतः उपनयन की अधिकतम अवस्था ब्राह्मण बालक की १६, क्षत्रिय बालकों की २२ तथा वैश्य वर्णों के बालकों की २४ होती है। ब्राह्मण बालकों के जीवन आदर्श एवं उच्च होने के कारण से इन्हें वैदिक शिक्षा को प्राप्त करने की अवस्था कम समय की प्राप्त थी।

---

[21] तै०ब्रा०(३/१०/९/१२)

[22] तैत्ति. सं. (६/३/१०/५)

क्षत्रिय बालकों का उद्देश्य शारीरिक बल एवं शक्तियों को अधिक बढ़ाना होता था। इन्हीं कारणवश क्षत्रियों की सीमा अधिक होती थी। और वैश्य बालकों की आयु दोनों वर्णों से अधिक प्राप्त थी क्योंकि वैश्य वर्ण में धन वैभव व दीर्घायु को प्राप्त करना उद्देश्य होता था। इन्हीं उद्देश्यों के माध्यम से प्राचीन काल में मानव जीवन से तर जाता था।

वेदारम्भ संस्कार-

उपनयन संस्कार तो घर पर ही हो जाता है किंतु वेदारम्भ संस्कार केवल गुरुकुल में ही होता है क्योंकि वेदारम्भ संस्कार के पश्चात् वैदिक शिक्षा प्रणाली को समझने में बड़ा महत्व रखता है। वेदारम्भ संस्कार शिक्षा प्रारंभ करने का संस्कार है। इसका दूसरा नाम मेखला है। वेदारम्भ संस्कार में गुरु, कुल, आचार्य, शिष्य, ब्रह्मचारी आदि को समझने की प्रतिक्रिया को बताया जाता है। "**ब्रह्मचार्येति कार्षणम**"[23] अर्थात् अथर्ववेद में मेखला का धारण करना महत्वपूर्ण माना गया है । "**श्रद्धाया दुहिता तपसो**"[24] अर्थात् वेदारंभ संस्कार को अर्थात् मेखला को श्रद्धा की पुत्री के रूप में और तप की सन्तान के रूप में माना था। मेखला इसलिए धारण कराया जाता था कि वह ज्ञान ,तप और श्रम के लिए बोधक होता और मृत्युंजय होने का साधन था।[25] वेदारंभ संस्कार के माध्यम से आचार्य बालक के चरित्र निर्माण के साथ साथ उसे सन्मार्ग का ज्ञान प्राप्त करते थे । "**यां त्वा पूर्वे भूतकृत ऋषय परिबेधिरे**"[26]**.** अर्थात् इसी वेदारंभ संस्कार के पश्चात् शिक्षा का प्रारंभ होता था।

अचार्य और ब्रह्मचारी - अथर्ववेद के ब्रह्मचर्य सूक्त में आचार्य और ब्रह्मचारी का संबंध किस प्रकार से होता है इसके विषय में बतलाते हैं कि ब्रह्मचारी आचार्य का ही एक अंग होता है – "**स आचार्यम् तपसा पिपर्ति**"[27] ब्रह्मचारी ही तपस्या करके आचार्य बन जाता था। ब्रह्मचारी जब तपस्या करता करता था तब है आचार्य की ज्ञान परंपरा को स्मरण रखता था कि

---

23 अथर्वणवेद ११/५/६
24 अथर्ववेद ६/१३३/४
25 अथर्ववेद ६/१३३/३
26 अथर्ववेद ६/१३३/५
27 अथर्ववेद ११/५/१

यही ऋषिऋण है और इसी ऋषिऋण शिक्षा से उऋण का माध्यम है। **"आचार्य को मृत्यु, वरूण, सोम कहा गया है"।**[28] उग्रता और कठोर अनुशासन के कारण ही आचार्य को मृत्यु कहा गया है। वह पाप और दुर्गुणों को दूर करता है तो इस कारण आचार्य को वरुण कहा गया है। अचार्य ब्रह्मचारी को अपने पास रखकर तेजस्विना प्रदान करता है।[29]

अथर्ववेद में कहा गया ही कि आचार्य को स्वयं भी ब्रहाचारी रहना चाइए क्योंकि प्रजापति और इंद्र आदि देवता लोग भी ब्रह्मचर्य के माध्यम से ही तेजस्विता प्राप्त किए हुए थे। आचार्य का अर्थ **आचारं ग्राहयतीति आचार्य:** अर्थात् ब्रह्मचारी को सदाचार की शिक्षा उसी को आचार्य कहते हैं।

ब्रह्मचर्य के नियम **ब्रह्मणि चरतीति ब्रह्मचारी** अर्थात् जो ब्रह्म में विचरण करता है वह ब्रह्मचारी होता है। अथर्ववेद में कहा गया है कि ब्रह्मचारी अपना जीवन तप में व्यतीत करे और अपने कर्मों के माध्यम से आचार्य की सेवा करे कि जिससे आचार्य प्रसन्न रहें। योग प्राणायाम के माध्यम से ईश्वर भक्ति करे जिससे वेद रूपी ज्ञान की रक्षा करे कि जिससे आस्तिकता को जगाया जाता है। ब्रह्मचारी ब्रह्म को धारण करके ब्रह्मज्ञानी होवे। अथर्ववेद में कहा गया हैं कि- "**ब्रह्मचर्येण कन्या युवानम्"**[30] बालक ही नहीं अपितु बालिकाओं को भी ब्रह्मचारी होने का आदेश प्राप्त है । ऐसी ही ब्रह्मचारिणी कन्याएं विवाह के योग्य मानी जाती है।

वैदिक उच्च शिक्षा -

प्राचीन काल में उच्च स्तर विद्यार्जन किया जाता था जिस के अनुरूप संस्कृत भाषा और व्याकरण तथा धर्म एवं नीति शास्त्रों की शिक्षा का प्रतिपादन किया जाता था। वैदिक काल में वैदिक साहित्य के आधार पर भिन्न भिन्न ग्रंथों कर्मकांड, ज्योतिर्विज्ञान, आयुर्विज्ञान कृषिविज्ञान, कलाकौशल, राजनीति शास्त्र, भूगर्भ शास्त्र आदि की शिक्षाएं उपलब्ध का अर्जन किया करते थे।

---

[28] अथर्ववेद ११/५/१४
[29] अथर्ववेद ११/५/१७
[30] अथर्ववेद ११.५.१८

वैदिक शिक्षण संस्थाएं-

वैदिक शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत बालकों की प्रारंभिक शिक्षा गृह पर ही दी जाति जाने लगी थी किंतु वैदिक शिक्षा का मुख्य उद्देश्य गुरुकुल में प्रवेश करने के पश्चात ही बालकों को विशिष्ट शिक्षा देने के लिए तैयार किया जाता था। जैसे उच्चारण करना, शब्दों का ज्ञान होना, भिन्न भिन्न कला कौशलों में रुचि आदि की शिक्षाएं प्रदान की जाती थी। बालकों को आवास से लेकर भोजन आदि तक की व्यवस्थाएं गुरुकुल में ही प्रदान की जाती थी। गुरुकुल के नियमों का यथा योग्य बालक को पालन करना होता था । अतः गुरु ही गुरुकुल का संचालन करता था। गुरुकुल शहर से दूर किसी जंगल वनों में नदी के किनारे हुआ करते थे क्योंकि बालकों का पठन-पाठन दिनचर्या में बाधाएं प्राप्त न हो सके। गुरुकुल में शिक्षा आध्यात्मिक रूप से दी जाती थी अतः गुरुकुल में गुरु तथा शिष्य दोनों का जीवन अत्यंत सरल साधारण होता था।

वैदिक शिक्षार्थी गण –

वैदिक शिक्षा के अंतर्गत गुरुकुल में केवल मात्र छात्रों को योग्यता अनुसार ही प्रवेश दिया जाता था। अतः गुरुकुल की परंपराओं तथा गुरु की आज्ञा के विपरीत कार्यों को करने एवं अनुशासनहीनता पर छात्रों को गुरुकुल से निकाल दिया जाता था। गुरुकुल में वही छात्र रहा करते थे जो शिक्षा को प्राप्त करने के इच्छुक एवं उत्साही भाव रखते थे। गुरुकुल में १२ वर्ष तक विद्या अध्ययन का कार्य होता है।

वैदिक शिक्षा परीक्षा प्रणाली -

वैदिक शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत परीक्षाओं का आयोजन नैतिक रुप से किया जात है। गुरु अपने शिष्यों को पाठ आगे पढ़ाने से पहले पढ़ाया हुआ ज्ञान की परीक्षा लेता है। छात्र अपनी छोटी- छोटी त्रुटियों को ज्ञान के माध्यम से दूर कर लेता है। वैदिक शिक्षा के अनुसार यही प्रतिक्रियाएं छात्र एवं गुरु प्रतिदिन करते है पठन-पाठन करने से पहले छात्रों का परीक्षण ज्ञान रूप से करना होता है।

वैदिक शिक्षा अनुशासन प्रणाली –

वैदिक कालीन अनुशासन प्रणाली प्रारंभिक में ही अनुशासन से समझाया जाता था । शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक रूप से संयम रखना शारीरिक रूप से संयम अर्थात् ब्रह्मचर्य पालन करना श्रृंगार, रासलीला, सुगंधित पदार्थ, मादक पदार्थ इत्यादि का सेवन न करना इंद्रिय संयम, जुआ न खेलना, गाय न मारना, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रम्हचर्य, अपरिग्रह का पालन न करना आदि आदेशों का पालन करने को ही अनुशासन माना जाता है।[31]

वैदिक कालीन गुरुकुल शिक्षा प्रणालीय-

वैदिक शिक्षा प्रणाली में गुरुकुलीय वेशभूषा के अंतर्गत विद्यार्थियों को उत्तरी वस्त्र एवं कटी वस्त्र का धारण करना होता है।

मेखला धारण-

ब्राह्मण के बालक सन क्षत्रिय बालक रेशम तथा वैश्य के बालक उन से बने हुए वस्त्रों को ही धारण किया करते थे। तथा क्रम पूर्वक ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य मूंज, तांस एवं सन की मेखलाओं को धारण करते थे।

दण्ड धारण-

गुरुकुल में ब्रह्मचारी गण एक पीपल का दंड भी धारण रखते थे। वह भी क्रमानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य के लिए ऊंचाई निश्चित थी जैसे सिर, मस्तक एवं नाक तक दंड को धारण किया करते थ।[32]

---

31 आपस्तम्ब १.२.७.३०

32 आपस्तम्ब २.१५२.६१

गुरुकुलीय दिनचर्या –

गुरुकुल की दिनचर्या ऋषि, मुनि, तपस्वियों की भांति एक कठोर दिनचर्या होती है जिसमें भूख- प्यास सर्दी-गर्मी इत्यादि को सहन किया जाता है। गुरुकुल की दिनचर्या बारह मास एक समान चलती रहती है। प्रातःकाल ब्रह्म मुहूर्त से लेकर रात्रि के १० बजे तक यह दिनचर्या चलती है। ब्रह्म मुहूर्त में उठकर ईश्वर भजन वंदन करके गुरूवंदना कर आसन ,प्राणायाम, संध्या, हवन पठन-पाठन श्रम इत्यादि प्रतिक्रियाओं को दिनचर्या के रूप में चलाया जाता है। गुरुकुल में वैदिक शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत दिनचर्या मैं छात्रों को कठोर अनुशासन में रहना पड़ता था। जैसे प्रातः काल ब्रह्म मुहूर्त में उठकर शौच, दातुन आसन, प्राणायाम, स्नान आदि करके सन्ध्या हवन आदि नित्य कर्मों का करना होता था तदुपरांत पठन-पाठन की प्रक्रिया प्रारंभ होती थी।

हवन तथा पाचन के लिए जंगल से लकड़ियां लाना भिक्षा मांगने जाना नगरों का ग्रामों में गायों के लिए चारा लाना आदि कर्यो का करना होता है । और छात्रों को श्रम, तप, व दीक्षा के द्वारा इंद्रिय, इच्छाए, यश, क्रोध, निंद्रा गंध, शारीरिक सौंदर्य आदि पर संयम करके गुरुकुल की दिनचर्या का अनुसरण करना होता है।

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के अनुसार पाठ्यक्रम -

वैदिक काल में पठन-पाठन एकाग्र चित्त होकर किया जाता था। वैदिक काल में परा विद्या अंतर्गत वेद तथा वेदों की समीक्षाओं का मुख्य उद्देश्य पाठ्यक्रम में पाया जाता था। यज्ञ एवं अन्य संस्कार विधियों का प्रयोगात्मक ज्ञान धारण कराया जाता था। तथा अपरा विद्या के अंतर्गत इतिहास, ज्योतिष, गणित ,जीव विज्ञान ,वनस्पति विज्ञान, भौगोलिक विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान आदि विषयों का ज्ञान प्रदान किया जाता था।

वैदिक काल में शिक्षा देने का माध्यम केवल संस्कृत भाषा में ही प्रदान की जाती थी। क्योंकि संस्कृत भाषा में ज्ञान अत्यधिक आवश्यक के रूप में माना जाता था और संपूर्ण वेदों के अंगों को समझने के लिए भी तर्कशास्त्र को भी अति आवश्यक माना जाता था। वर्तमान

समय में शिक्षा की दो पद्धतियां ही प्राप्त होती हैं - लैखिक और मौखिक अत: प्राचीन काल में शिक्षा की तीन पद्धतियां प्राप्त होती हैं। विद्यार्थी अपने जीवन में किस प्रकार से विद्यार्जन करता है। वैदिक काल के समय में शिक्षा केवल मात्र मौखिक रूप से दी जाती थी इसी के माध्यम से वेदों को श्रुति कहा गया है वैदिक कालीन शिक्षा को श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन प्रणाली के अनुरूप ग्रहण करते थे।

- **श्रवण**
- **मनन**
- **निदिध्यासन**
- **श्रवण -** अर्थात् सुनना इसी प्रक्रिया के माध्यम से वेदों को श्रुति कहा जाता है क्योंकि इसी श्रुति परंपरा के माध्यम से ही वेदों का आज भी उपलब्ध होना हमारे लिए गर्व की बात है।
- **मनन -** अर्थात् मनन से तात्पर्य होता है की जब हम ऋषि-मुनियों से उपदेश या मार्गदर्शन प्राप्त करते हैं जो सुना है उसको मनन करना स्मरण रखना इसी को मनन कहते हैं ।
- **निदिध्यासन -** अर्थात् शिक्षा का वह पहलू है की जिसके माध्यम से विद्यार्थी अपने जीवन में श्रवण किया हुआ ज्ञान मनन से उसे रखा है इन दोनों के माध्यम से तीसरी अवस्था में उसका आचरण करना उसको अपने जीवन में व्यवहार में अनुसरण करना इसी शिक्षा प्रणाली का नाम निदिध्यासन है।

गुरुकुल शिक्षा शिक्षण विधि -

वैदिक कालीन शिक्षा के अंतर्गत छात्रों को ज्ञान को प्रत्यक्ष रूप में धारण कराया जाता था। शिक्षा प्रदान करने में शिक्षक को सर्वो परि माना जाता है। वैदिक काल में शिक्षक संस्कृत भाषा के माध्यम से ही छात्रों को शिक्षा का ज्ञान प्रदान करता था। शिक्षक छात्रों को योग्यता अनुसार शिक्षा तीन वर्गों में विभक्त करता था ।

- **श्रेष्ठ**
- **श्रेष्ठतर**
- **श्रेष्ठतम**

वैदिक शिक्षा के अनुसार ज्ञान को धारण करने की दो प्रमुख विधियां प्राप्त है तप और श्रुति। तप विधि के अनुसार विद्यार्थी स्वयं चिंतन, मनन, आत्मानुभूति से ज्ञान प्राप्त करता था। तथा श्रुतिविधि के अनुसार धर्मात्मा, विद्वान गुरुओ से सुनकर ज्ञान प्राप्त करना होता है। वैदिक काल में श्रवण, मनन एवं निदिद्यासन इन तीनों विधियों का भी ज्ञान प्राप्त किया जाता रह है। वैदिक शिक्षा प्रणाली में सर्वोच्च विद्या प्राप्ति का मुख्य साधन शास्त्रार्थ परम्परा प्रचलित है। सभाओं का आयोजन कर विद्वानो एकत्रित कर अनन्य विषयों पर अपने विचार प्रकट कर मंथन करना आदि।

गुरुकुलीय परीक्षा प्रणाली -

गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत परीक्षाओं का आयोजन नैतिक रुप से किया जात है। गुरु अपने शिष्यों को पाठ आगे पढ़ाने से पहले पढ़ाया हुआ ज्ञान की परीक्षा लेता है। छात्र अपनी छोटी-छोटी त्रुटियों को ज्ञान के माध्यम से दूर कर लेता है। वैदिक शिक्षा के अनुसार यही प्रतिक्रियाएं छात्र एवं गुरु प्रतिदिन करते है पठन-पाठन करने से पहले छात्रों का परीक्षण ज्ञान रूप से करना होता है।

गुरुकुलीय गुरु शिष्य संबंध -

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत गुरु एवं शिष्यों के मध्य में मधुर तथा आध्यात्मिक विचारों के रूप में संबंध प्राप्त होते है। गुरु के प्रति शिष्य सम्मानजनक स्थान रखते है। तथा गुरु भी छात्रों के प्रति माता-पिता भाई- बहन के भांति स्नेह प्रेम करता है। छात्र गुरु के आज्ञाकारी तथा अनुशासनवान होते है तथा गुरु की सेवा करना अपना परम लक्ष्य भी समझते

है। गुरु शिष्य संबंध वैदिक शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत किसी और शिक्षा प्रणाली में देखने को नहीं मिलता है।[33]

समावर्तन संस्कार -

वैदिक शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत गुरुकुल में छात्रों की शिक्षा पूर्ण हो जाने के पश्चात गुरु शिष्य को उज्जवल भविष्य के लिए अपने कर्तव्यों का मार्ग प्रशस्त करते है। जिससे समावर्तन संस्कार के रूप में प्रतिपादन किया जाता है । यह समावर्तन संस्कार को आधुनिक समय में दीक्षांत समारोह के रूप में प्रचलित होता है यह समावर्तन संस्कार का विकृत रुप है। वैदिक शिक्षा के अनुसार गुरु शिष्य को नैतिकता का पाठ अत्यधिक उपयोगी समझते है। जैसे - सत्य बोलना, शुभ कर्मों का पालन करना, वेद अध्ययन करना, स्वाध्याय में आलस्य न करना, यज्ञ, माता-पिता एवं गुरुजनों की आज्ञा पालन करना एवं सेवा सुश्रुषा करना, "सत्यं वद धर्मं चर वेदं पठ यज्ञं कुरु" च। गुरु जनो की शिष्यों के प्रति उनके जीवन को उज्जवल तथा सार्थक बनाने में अहम भूमिका होती है।[34]

गुरुकुलीय दंड व्यवस्था-

वैदिक शिक्षा प्रणाली में शिक्षा को प्राप्त करते समय दंड का कोई विशेष स्थान नहीं है। किंतु छात्र जब अत्यधिक गलती करते है तो तब व्रत को रखने के रूप में दंड दिया जाता है। उपनिषदो मे एक प्रसग प्राप्त होता है जिसमे आचार्य उद्दालक अपने शिष्य अरुणि को दण्ड के रुप मे उसे ब्रत रखने को कहते है। जिसमे विद्यार्थी को तीन मास अल्पाहार रहकर आत्म शुद्धि एवं चिंतन मनन करना होता है। वैदिक शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत मुख्य रूप से दंड व्यवस्था इसी प्रकार से प्रावधान है।[35]

---

[33] मुण्डकोपनिषद १.२.१२

[34] तैत्तरीयोपनिषत् शिक्षावल्लि.१

[35] आपस्तम्ब. २.१५२.६१

गुरुकुलीय वित्त व्यवस्था-

वैदिक शिक्षा प्रणाली के अनुसार वित्त की व्यवस्था करना गुरु का ही परम कर्तव्य होता है। गुरु अपने त्याग एव निस्वार्थ भाव से तन, मन एवं धन से पूर्ण व्यवस्थाएं उपलब्ध कराता है। छात्रों की आवास से लेकर भोजन एवं पठन-पाठन तक की व्यवस्था भी गुरु का ही कर्तव्य है । तथा छात्र भी भिक्षाटन, पशुपालन, कृषि, गाय की सेवा आदि के रूप में गुरु की सहायता किया करता है।

गुरुकुल शिक्षा प्रणाली -

प्राचीन समय में वैदिक काल में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली प्रचलित थी। इस शिक्षा प्रणाली में शिष्य गुरु के पास जाकर ब्रह्मचर्य पूर्वक गुरु के क्षत्र छाया मे रहकर तथा अंतेवासी बनकर रहना पड़ता है। जैसा कि –

"आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिण मिच्छते।"[36]

ब्रह्मचर्य के द्वारा आचार्य ब्रह्मचारी की प्राप्ति की कामना करता है। तथा-

"आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भपन्तः"।[37] अर्थात् आचार्य उपनयन संस्कार करके ब्रह्मचारी को अपनी रक्षा में लेते हैं यह कार्य गुरुकुल, ऋषिकुल, विद्यापीठ आदि के रूप में शिक्षण स्थलों के रूप में चलता था इनमें ब्रह्मचारी को लोक की शिक्षा तथा ब्रह्म की शिक्षा दोनों दी जाती है। जैसे –

"आचार्यस्ततक्ष नभसी उभे ऽ इमेऽउर्वीऽगम्भीर पृथिवीं दिवं च ।
ते रक्षति तपसा ब्रह्मचारीतस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति" ॥[38]

अर्थात् अचार्य ब्रह्मचारी को पृथ्वी और द्युलोक की विद्याएँ भी पढ़ाता है । ब्रह्मचारी उन विद्याओं से पृथ्वी और द्युलोक की रक्षा करता है। इस पृथ्वी और द्युलोक में रहने वाले देव विद्वान् आदि तथा सृष्टि के तत्व उस ब्रह्मचारी के साथ एकमन हो जाते हैं । अर्थात् आचार्य

---

36 अथर्ववेद ११/५/१७
37 अथर्ववेद ११।५।६
38 अथर्ववेद ११/५/८

की शरण में विद्या अध्ययन के लिए ब्रह्मचारी के रहने पर उसको समस्त विद्याओं का अभ्यास कराया जाता था, जिससे वह पृथ्वी एवं द्युलोक की रक्षा करने में समर्थ होता था, जिसका प्रमुख कारण सृष्टि के तत्वों पर उसका अधिकार विद्या एवं विज्ञान के आश्रय से होता है।

"आचार्यो मृत्युर्वररुणः सोमपा ओषधयः पयः ।

जीमूता आसन्सत्वानस्तैरिदम स्वराभृतम् ॥"[39]

अर्थात् -उस ब्रह्मचारी के आचार्य मृत्यु, वरुण, सोम ,औषधियां, जल, मेष, आदि सब सहयोगी होते हैं और वह मोक्ष सुख का अधिकारी बनता है । इस प्रकार ब्रह्मचारी लौकिक एवं मोक्ष प्राप्ति की शिक्षा- विद्या और अविद्या की शिक्षा से दीक्षित किया जाता है । इस ब्रह्मचर्य की शिक्षा से लाभ का वर्णन भी प्राप्त होता है –

"**ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत ।**

इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत् ॥"[40]

अर्थात् ब्रह्मचर्य की तपस्या से विद्वानों ने मृत्यु को पराजित किया और इंद्र ने ब्रह्मचर्य के प्रताप से स्वर्ग का राज्य लाभ प्राप्त किया ।

"**ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद् बिभर्ति तस्मिन् देवा अधि विश्वे समोताः।**

प्राणापानौ जनयन्नाद् व्यानं वाचं मनो हृदयं ब्रह्म मेधाम् ॥"[41]

अर्थात् - ब्रह्मचारी ब्रह्मज्ञान से दीप्त होता है । दिव्य गुण आते हैं। प्राणापान के द्वारा ममन करता हुआ ब्रह्मज्ञान का अधिकारी बनता है।

"**तानि कल्पद् ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोऽतिष्ठत् तप्यमानः समुद्रे।**

स स्नातो बभ्रुः पिङ्गलः पृथिव्यां बहु रोचते ।।"[42]

---

[39] अथर्ववेद ११/५।१४
[40] अथर्ववेद ११।५।१९
[41] अथर्ववेद ११५।२४
[42] अथर्ववेद ११।५।२६

अर्थात् आचार्य रूपी विद्या के तप्यमान एवं तेजस्वी समुद्र में विद्या रूपी जल के ऊपर ब्रह्मचारी तप का अनुष्ठान करते हुए आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक शक्तियों का निर्माण करता है। इस प्रकार तप के जल से निर्मल होकर ब्रह्मज्ञान एवं तेज धारण करता हुआ, निर्भिमानी होकर पृथ्वी पर बहुत प्रकार से सबका आदरणीय होता है एवं शोभित होता है। इस प्रकार से शिक्षा का गुरु से सब विद्या और अविद्याओं का अध्ययन क्रम चलता है। इस शिक्षा क्रम में आचार्य भी ब्रह्मचारी बनकर जीवन व्यतीत करता है। अर्थात् सांसारिक वासनाओं पर विजय प्राप्त करके अपनी शक्ति एवं समय का विद्या - दान में उपयोग करता था। इसी प्रकार विद्यार्थी ब्रह्मचारी नाम को ग्रहण कर पूर्ण तपस्वी, सांसारिक वृत्तियों को दमन कर ब्रह्म तेज को धारण करते हुए सृष्टि के छोटे से छोटे पदार्थ से लेकर ब्रह्म पर्यन्त अलौकिक विद्या और ब्रह्मविद्या के अध्ययन में अपनी शक्ति एवं समय का उपयोग करता है। दोनों गुरु और शिष्य का पूर्वक व्यवहार माता और पुत्र के जैसा होना चाहिए वैसा होता है।

"तं रात्रीस्तिस्त्र उदरे विभर्ति" [43] अर्थात् उस ब्रह्मचारी को तीन रात्रि आचार्य अपने उदर में धारण करता है अर्थात् "**सर्वातमना"** वह ब्रह्मचारी आचार्य के आधीन ही रहता है ब्रह्मचारी अपने उस काल में औषधि, वृक्ष, वनस्पति, दिन-रात ऋतु वर्षा, बैल, घोड़ा, ग्रामीण तथा जंगली पशु एवं पक्षी सब में ब्रह्मचारी की ही दिव्य भावना देखता है। उसको समस्त सृष्टि से ब्रह्मचर्य की प्रेरणा प्राप्त होती है।

ब्रह्मचर्य का महत्व –

ब्रह्मचर्य का वर्णन अथर्ववेद में देखने को मिलता है कि ब्रम्हचर्य से हीं मृत्यु पर विजय प्राप्त की जाती है देवताओं ने भी ब्रह्मचर्य के माध्यम से मृत्यु को बस में कर लिया था। **"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपा..."** [44] ब्रह्मचर्य के माध्यम से ही इंद्र ने देवों को तेजस्वी

---

[43] अथर्ववेद ११।५।३

[44] अथर्ववे ११/५/१९

बनाया। “**तान् सर्वान् ब्रह्म रक्षति ब्रह्मचारि…”**[45] अर्थात् ब्रह्मचारी ने ब्रह्म की शक्ति से समस्त संसार की रक्षा कर सकता है। अथर्ववेद में ब्रह्मचारी को द्युलोक और पृथ्वी को धारण करने वाला कहा गया है।

“स दाधार पृथिवीम् दिवम् च”[46]

अर्थात् ब्रह्मचर्य के संयम से ब्रहाचारी विश्व का धारक होता है। ब्रह्मचर्य का अर्थ है ब्रह्म अर्थात् वेद उत्तम ज्ञान तदनुसार आचरण करना उत्तम ज्ञान पूर्वक व्यवहार करना ब्रम्हचर्य का शाब्दिक अर्थ होता है दूसरे अर्थ में अगर कहें तो ब्रह्मचर्य व्रत का अनुष्ठान करते हुए अर्थात् अपनी काम क्रोध लोभ मोह एवं अहंकार आदि वासनाओं को त्याग कर चरित्रवान बन कर विद्या का अध्ययन करना ही ब्रह्मचर्य का तात्पर्य होता है। चरित्र निर्माण के निर्माण के लिए ब्रम्हचर्य का पालन विद्यार्थी के लिए श्रेष्ठ व उज्जवल बनाता है।

वर्त्तमान शिक्षा प्रणाली में ब्रह्मचर्य का अभाव -

वर्तमान समय मे आज की शिक्षा में ब्रम्हचर्य एवं चरित्र का कोई महत्व नहीं है इसलिए विद्यार्थियों का कुछ भी चरित्र निर्माण नहीं होता है ब्रह्मचर्य के अभाव से निस्तेज, बलहीन, बुद्धिहीन, दुर्बल, आलसी एवं गूढ विषयों के ज्ञान को धारण करने में असमर्थ दिखतें हैं। जो ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करता है तो वह चरित्रहीन शिक्षा से मानव का निर्माण भी नहीं कर सकता है। अपितु मानव जीवन का तथा उसके धन स्वास्थ्य एवं समय का दुरुपयोग ही होता है। परन्तु आज की शिक्षा में ब्रह्मचर्य एवं चरित्र का कोई महत्व नहीं है। इसलिए आज शिक्षा से विद्यार्थियों का कुछ भी चरित्र-निर्माण नहीं होता। वे ब्रह्मचर्य के अभाव से निस्तेज, बलहीन, बुद्धिहीन एवं गूढ विषयों के ज्ञान को ग्रहण करने में असमर्थ प्रतीत होते हैं। ब्रह्मचर्य तप का प्रतीक है। परन्तु आज के समय में विद्यार्थी तप से जीवन व्यतीत करने के स्थान पर, आराम, आलस्य, शृङ्गर, द्रव्य का अपव्यय एवं शरीर शक्तियों के भी अपव्यय को प्रधानता दे रहा है।

---

[45] अथर्ववेद ११/५/२२

[46] अथर्ववेद ११/५/१

शिक्षा के बारे में विचार करते समय आज ब्रह्मचर्य की कोई उपयोगिता जब शिक्षा विदो को प्रतीत नहीं होती है, तब चरित्र-निर्माण हो ही नहीं सकता है। चरित्रहीन शिक्षा से मानव का निर्माण नहीं होता है। अपितु मानव के जीवन का तथा उसके धन, स्वास्थ्य एवं समय का दुरुपयोग ही होता है।

शिक्षा-क्षेत्र में वेद के प्रति भ्रांतिया -[47]

इस संदर्भ में ब्रह्मचर्य काल में ब्रह्मचारी वेदों का अध्ययन किया करता है। आज के समय में ब्रह्म का ही अत्यधिक अस्तित्व शिक्षा के क्षेत्र में नहीं है तो परब्रह्म के शब्द ब्रह्म के अध्ययन को भी शिक्षा के क्षेत्र में स्थान प्राप्त है । आज जिनके हाथ में शिक्षा का संचालन सूत्र है उनके विचार एवं विश्वास में वेद एक ऐतिहासिक एवं साहित्यिक ग्रंथ मात्र है जिसे पूर्व समय में लोगों ने बनाया है ऐसी स्थिति में उनकी दृष्टि में ईश्वरीय ज्ञान नहीं है ।

अतः इनके पठन-पाठन से कोई लाभ नहीं है। वे प्राचीन समय की भाषा के विकास सभ्यता, रहन- सहन, तत्कालीन समाज एवं शासन व्यवस्था तथा कर्मकांड आदि के प्रदर्शक मात्र है और इस प्रकार से जो उनका अध्ययन करना चाहे यह अपनी लालसा की तृप्ति के लिए उसका अध्ययन करें उनका सबके लिए अध्ययन आवश्यक नहीं है और ना ही वर्तमान समय की शिक्षा प्रणाली में उनके प्रवेश की आवश्यकता है। शिक्षा के क्षेत्र में वेद के विषय में ऐसी भ्रांत धारणाए वर्तमान समय की शिक्षा प्रणाली सभ्यता एवं अधूरे ऐतिहासिक एवं वैज्ञानिक अनुसंधानों का परिणाम है उनकी यह धारणा असत्य है|

महर्षि दयानन्द सरसस्वती ने आर्य समाज के तीसरे नियम में कहा है कि -

"वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है इसका पठन-पाठन, श्रवण-मनन हम सभी मनुष्यों का परम उद्देश्य है।[48]" उसके अंदर उच्च से उच्च दार्शनिक शिक्षा के विचार प्राप्त हैं। उसके अन्दर उच्च भौतिक विज्ञान भी है और आध्यात्मिक विज्ञान भी है। उसके अन्दर

[47] वैदिक सम्पदा पुस्तक पृष्ठ संख्या ३४२

[48] स्वामी दयानन्द आर्य समाज के तीसरे नियम ३

उच्च से उच्च शिक्षाएँ भी। वेद में समस्त विद्याओं की विद्यमानता बीज रूप से है। जिस प्रकार से गणित या विज्ञान में संक्षिप्त एवं गूढार्थ की सूत्र रूप भाषा होती है और उनका विस्तार पृथक् करना पड़ता है उसी प्रकार वेदों की भी स्थिति है। विज्ञान के फार्मूलों को यदि इतिहास के जानने वालों को हल करने को दे दिया जावे तो वह उसको रद्दी में फेंक देने योग्य समझेगा। उसी प्रकार की दशा वर्तमान समय की शिक्षा-दीक्षा से वेद के विषय में अनभिज्ञ होने के कारण हुई है।

वैदिक शिक्षा से देश की प्रतिभा एवं चारित्र्य निर्माण का विकास संभव -

शिक्षा के क्षेत्र में सदाचार, चारित्र्य, सादगी, तप, संयम, ब्रहाचर्य का पालन, बुद्धि विकास के लिए प्राणायामादि, योग का शिक्षण, ईश्वर की मान्यता आदि अनेक आवश्यक एवं आदर्श विषयों के प्रवेश एवं उनकी उपयोगिता की प्रेरणा वेदों से ही प्राप्त होगी । इसके बिना जीवन अधूरा ही रहेगा । इनके बिना शिक्षा केवल वस्त्रों के बाह्य आडम्बर में लिपटी रहेगी। नये - नये फैशनों का उद्गम होता रहेगा और अन्दर-अन्दर मानवता और आत्मा अविकसित ही रह जायेंगे। हमारा देश शिक्षा के क्षेत्र में विदेशी शिक्षा-दीक्षा का पूर्णतया दास बना हुआ है। इसकी प्रतिभा का विकास नहीं हुआ है। इसकी प्रतिभा का विकास विद्यार्थी-जीवन को ब्रह्मचारी बना कर, योग आदि शिक्षण के द्वारा जाग्रत किया जा सकता है। तभी यह शिक्षा के क्षेत्र में विदेशियों की दासता से मुक्त होकर जगद् गुरु बनने के मार्ग पर अग्रसर हो सकेगा।

वैदिक शिक्षा का द्वितीय आदर्श प्रकार -[49]

वर्तमान समय में कुछ वर्ष पूर्व तक शिक्षणालयों में शिक्षण का कार्य बालक की ६ एवं ७ वर्ष की अवस्था से किया जाता था। इस अवस्था से पूर्व की अवस्था में भी बालक की कोई शिक्षा हो सकती है, इस बात से शिक्षाविद कुछ काल पूर्व अनभिज्ञ रहते थे। पुनः उन्होंने अनुभव किया कि बालकों को इससे भी छोटी अवस्था से शिक्षण दिया जा सकता है और बालक की सुप्त शक्ति को जाग्रत किया जा सकता है। तदनुसार बाल-मन्दिरों के २-३ वर्ष के

[49] वैदिक सम्पदा पुस्तक पृष्ठ संख्या ३४३

बालकों का भी शिक्षण प्रारम्भ हुआ परन्तु शिक्षाशास्त्री अभी भी अनभिज्ञ हैं। बालक बालिकाओं को शिक्षा इससे भी पूर्व दी जा सकती है और वह प्रकार हमारे देश में प्रचलित था। इस प्रकार का शिक्षण जीवन की अविकसित एवं निर्माण की अवस्था में ही दिया जाता था। इस प्रणाली को संस्कार प्रणाली कहते है। इस प्रकार संस्कार की शिक्षण-प्रणाली और विद्यालयकालीन प्रणाली इन दोनों का प्रचलन था।

जन्म से पूर्ण संस्कार-प्रणाली -[50]

हमारे पूर्वज ऋषि-मुनियों ने देखा कि वेद में संस्कार प्रणाली का शिक्षण विद्यमान है। अत: बालक की उत्पत्ति से पूर्व, बालक के गर्भावस्था मे आने पर एवं उससे पूर्व की अवस्था में, गर्भ की विभिन्न स्थितियों में, उत्पन्न होने पर भी विविध विकास की अवस्था में बीज रूप से शिक्षण संस्कारप्रणाली से हो सकता है और जैसा बालक को बनाना हो, उसको वैसा बनाने के लिए माता और पिता अपने संस्कार एवं प्रयत्नों से वैसा बना सकते हैं। रानी मदालसा ने इसी परीक्षण को सिद्ध करके बताया था कि राजकुल में उत्पन्न होने पर भी पुत्र वैरागी हो सकते हैं ।

वामदेव ऋषि ने गर्भ में ही शयन करते हुए ज्ञान प्राप्त किया और अभिमन्यु ने भी चक्रव्यूह भेदन का ज्ञान गर्भावस्था में ही प्राप्त किया । अतः माता के गर्व से जन्म लेने के बाद एवं उससे भी पूर्व गर्भावस्था तथा उससे भी पूर्व की अवस्था में जीव जिस वीर्य रूप अवस्था में गतिमान रहता है। उस अवस्था पर भी संस्कारों का, विचारों का,परिस्थितियों का प्रभाव शारीरिक एवं बौद्धिक विकास के माध्यम से पड़ता है।

जन्म से पूर्व वैदिक शिक्षा प्रणाली की उपयोगिता -

हमारे शरीर के स्वास्थ्य बुद्धि बल एवं तेज के ऊपर जहां आहार बिहार का प्रभाव पड़ता है। शरीर की सब धातुओं का सार एवं तेज वीर्य रूप में निर्मित होता है। उसमें तेज केंद्रित होता है अतः माता के गर्भ में भी माता के संस्कारों को प्रभाव पड़ेगा या माता पर जैसे

[50] वैदिक सम्पदा पुस्तक पृष्ठ संख्या ३४३

संस्कार डाले जाएंगे वैसे ही प्रभाव बालक पर पड़ेंगे। यह क्रिया उत्पन्न होने के बाद उसकी अविकसित मानसिक अवस्था पर प्रभाव डालने के लिए संस्कार से एवं चारों और का वातावरण बनाकर प्रभावित किया जाता है। जैसे किसी व्यक्ति को किसी के प्रति विरोधी बातों के सुनाने से उसके प्रति उसमें घृणा एवं क्रोध के भाव बढ़ जाते हैं और पुनः उन्हीं भावनाओं के वशीभूत होकर क्रिया करने लगता है उसी प्रकार संस्कार की एक सामान्य परंपरा से मानव जाति के मन को एक समान विकसित भी किया जा सकता है। अतः इसी संदर्भ में १६ संस्कारों का निर्माण वेदों में प्राप्त होता है। गर्भाधान, पुंसवन, सीमांतोनयन आदि। जो व्यक्ति इन संस्कारों को अपने जीवन में धारण कर लेता है तो वो दिन प्रतिदिन उन्नति को प्राप्त करता है।[51]

संस्कारों का प्रभाव -

संस्कारों के प्रभाव को इस प्रकार से समझाया जा सकता है कि जब-जब जिस - जिस स्थिति में जीवन का एक स्थिति से दूसरी स्थिति में प्रवेश होते हैं तो उस समय की स्थिति में सस्करों को किया जाता है।[52] अर्थात् जीवन की एक स्थिति के प्रारंभ में ही निर्माण की भावना के विचार एवं संस्कारों का आधान इस प्रकार किया जाता है । इन संस्कारों के अवसर पर इष्ट मित्र एवं कुटुंबीजन भी एकत्र होते हैं और उन सब की मनोकामना एवं वातावरण का प्रभाव पड़ता है। जब बालक उत्पन्न होता है तब उसकी जिह्वा पर सोने की सलाका से घी और शहद से ओम लिखा जात है । स्वर्ण के स्पर्श के साथ घी व मधु से जिह्वा पर लेखन से स्वर्ण का प्रभाव भी बालक पर पड़ता है और इससे बुद्धि की वृद्धि होती है। इसे मेधाजनन कर्म कहते हैं ।

"अश्माभवतु न स्तनुः"[53] के अनुसार - अश्मा भव परशुर्भव - बालक के स्कंध को स्पर्श करके कहा जाता है कि तू पत्थर के समान दृढ़शरीर वाला, सहन शक्ति वाला बनना और

---

[51] वैदिक सम्पदा पुस्तक पृष्ठ संख्या ३४४
[52] वैदिक सम्पदा पुस्तक पृष्ठ संख्या ३४४
[53] यजुः २९/३९

परशु के समान तेजस्वी, विरोधी शक्तियों को छिन्न करने वाला, वीर, विजयी संसार में बनना। इस प्रकार के संस्कार डालने के लिए बालक के उत्पन्न होने के कुछ ही क्षणों में यह क्रिया की जाती थी। उत्पन्न होने के बाद ग्यारहवें दिन ही बालक के प्राण के साथ पिता अपनी अंगुली लगाकर पूछता है – "**कोऽसि कतमोऽसि कस्याऽसि को नामाऽसि** "[54] ये चार प्रश्न प्राण के माध्यम से अपनी ध्वनि से उत्पन्न शारीरिक कम्पन से बालक के प्राणों को कंपित करते हुए पूछता है।

वैदिक शिक्षा प्रणाली की प्रथम रूपरेखा -[55]

वेदानुसार शिक्षा - वेद चार है अतः प्रमुख रूप से चार प्रकार का ज्ञान है। चार प्रकार के ज्ञान के आधार पर चार प्रकार की शिक्षा होनी चाहिए। अतः हम वेदानुसार यहां उल्लेख कर रहे हैं।

ऋग्वेद में मानवोपयोगी समस्त पदार्थों का ज्ञान उपलब्ध है। अतः सृष्टि के दृष्टि एवं अदृष्ट पदार्थों के अनुसंधान एवं अध्ययन मानव जाति के लिए आवश्यक है । यही प्राथमिक ज्ञान है। इस ज्ञान के बिना पदार्थों का उपयोग नहीं हो सकता इसलिए ऋग्वेद को ज्ञान कांड कहा गया है।

यजुर्वेद में पदार्थों के संयोग वियोग, संगति, करण का व्यवहारिक ज्ञान है इसलिए यजुर्वेद को कर्मकांड का प्रतिपादक कहा गया है। विनय पदार्थों के संगति करण ज्ञान या प्रयोग विधि न जानने से ज्ञान का उपयोग संभव नहीं है। अतः शिक्षा को क्रियात्मक, प्रयोगात्मक,एवं व्यवहारात्मक भी मानना चाहिए।

सामवेद मैं ज्ञान और कर्म के द्वारा जो अभीष्ट सिद्धि, फल या परिणाम है उसका ध्यान है। फल के समीप में अपनी स्थिति ही उप+आसना= उपासना है। इसी उपासना में आनंद की प्राप्ति है। जिस ज्ञान एवं कर्म के फल का ध्यान न हो और फल की प्राप्ति न हो वह निष्फल

---

54 यजु.७/२९

55 वैदिक सम्पदा पुस्तक पृष्ठसंख्या ३५०

होने से आनंद की भी प्राप्ति नहीं करा सकता। पदार्थ ज्ञान पदार्थों के परस्पर संगति करण, पृथक्करण एवं उसके परिणाम, फल का ज्ञान मनुष्य को आवश्यक है। यही सामवेद का उपासना कांड है। अथर्ववेद- अविचल, संशय रहित, सुनिश्चित ज्ञान, फल, परिणाम एवं आनंद की स्थिति से संबंधित है। ज्ञात है एवं अनुभूत परिणामों के आधार पर मान्यता प्रयोग आदि कर लोकोपकार के लिए व्यवहार आदेश यही अथर्ववेद की शिक्षा का स्वरूप है जो शिक्षा निरुदेश्य, निष्प्रयोजन निरर्थक हो लौकिक एवं पारलौकिक न देने वाली हो तथा आत्मिक और परमानंद की प्राप्ति न करने वाली हो, ऐसी शिक्षा ऐसा पाठ्यक्रम व्यर्थ है। इसी आधार पर वर्त्तमान समय में भी शिक्षा की रूपरेखा निर्धारित होनी चाहिए।

चतुर्वर्णानुसार -

वेद चार हैं,चारों वेदों के चार वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र हैं। समस्त मानव जाति को चार वर्णों के माध्यम से ही शिक्षा दी जाती थी। मनुष्यों में, समाज में या राष्ट्र में चार प्रकार की ही प्रधान रुप से परस्पर योगी प्रवृतियां जागृत होनी चाहिए। तभी समाज राष्ट्र की उन्नति हो सकती है। ब्राह्मण ,क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र यह सामाजिक गुणों की प्रवृत्तियां हैं यह जन्म गत जातियां नहीं अपितु ज्ञान, गुण, कर्म के आधार पर हैं।

"ब्राह्मणोस्य मुखमासीत् बाहू राजन्यः कृतः ।
अरु तदस्य यद्वैश्यः पदभ्याम् शूद्रो अजायत ।।"[56]
"रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि ।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचारूचम् ॥"[57]

---
56 यजुर्वेद २१।११
57 यजुर्वेद १८।४८

अर्थात् इनके गुणों का वर्णन करना या इनके गुणों से अपने को आच्छादित करना यही वर्ण का प्रयोजन है अतः पूर्वोक्त चारों वेदों के अनुसार शिक्षा चारों प्रकार के गुण कर्म एवं स्वभाव वालों के लिए स्व-स्व अनुकूल होनी चाहिए।

"रुचं नो धेहि ब्राहाणेषु०"[58] अर्थात् प्रारंभ के ही शब्दों से यही अर्थ का बोध होता है कि चारों वर्णों में उनकी गुण धारण शक्ति, वर्णोचित प्रवृत्ति के अनुरूप शिक्षा का स्वरूप निर्धारण करना चाहिए। कुछ थोड़ा सा वर्णों की शिक्षा का स्वरूप इस प्रकार से मिलता है कि-**"आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्म वर्चसी जायतामाराष्ट्र राजन्यः शूर इषव्योतिव्याधी महारथो जायताम्"**[59] अर्थात् हमारे राष्ट्र में ब्राह्मण ब्रह्मवर्चसी, हों क्षत्रिय बली हों युद्ध विद्या में निपुण हों महारत, महासैन्यों के संचालकों हों। यह कार्य तभी संभव है जब ब्राह्मण वर्ण की शिक्षा के लिए ब्रह्मवर्चसी ब्राह्मणों की ही नियुक्ति की जावे। शास्त्र विद्या के लिए क्षात्र विद्या में कुशल क्षत्रिय ही नियुक्त किया जावे । वैश्य कर्म व्यापार आदि की शिक्षा के लिए वैश्य वर्ण में निपुण देश्य शिक्षकों को नियुक्त किया जाए और श्रम कर्म की शिक्षा के लिए जो तप साध्य है उनके लिए तपस्वी श्रमिक शूद्र अध्यापकों के द्वारा शिक्षण प्रदान किया जाना चाहिए।

यजुर्वेद के तीसवें अध्याय के पांचवें मंत्र में कहा हैं कि-

"ब्रह्मणे ब्राह्मणम्, क्षत्राय राजन्यम्, मरुद्भ्यो वैश्यम्, तपसे शुगम०"[60] अर्थात् ब्रह्म कर्म के लिए ब्राह्मण उचित शिक्षा के लिए ज्ञान, विज्ञान, अध्यात्म, ब्रह्म विद्या ,देववाणी ,परा विद्या आदि की शिक्षा के लिए ब्राह्मण को नियुक्त करें। क्षात्र करण की शिक्षा के लिए क्षत्रियों को नियुक्त करें । वैश्य शिक्षा के लिए गमनागमन, यातायात, व्यापार, गढ़ना कोष कार्यों की शिक्षा के लिए वैश्य की नियुक्ति करें और तब श्रम अधिकारियों के लिए (तपसे शूद्रम) शूद्र को नियुक्त करें। वेद का शूद्र शब्द निंदित अर्थ में नहीं है अपितु तपकर्म तथा तपस्वी व्यक्ति के

---

58 यजुर्वेद १८।४८
59 यजुर्वेद २।२२
60 यजर्वेद३०/५

लिए प्रयुक्त है। अतः पूर्व उक्त चारों वेदों के अनुसार शिक्षा को चतुर्वर्ण के आधार पर व्यक्त किया है।

चारों आश्रमों के अनुकूल शिक्षा -

चार वेद हैं, चार वर्ण हैं और चार आश्रम हैं । आश्रम जीवन की अवस्थाएं हैं। आश्रम शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की गई है।[61] वन की विभिन्न अवस्थाओं के अनुकूल शिक्षा होनी चाहिए।

आश्रम की परिभाषा जैसे- "**आश्राम्यन्ति अस्मिन् इति आश्रम:"** अर्थात् ऐसी जीवनप्रक्रिया जिसमें व्यक्ति अत्यधिक परिश्रम करता है जिसमें अच्छी प्रकार श्रम, परिश्रम आदि किया जाए ।

आश्रमों का संबंध अवस्था अनुसार है। जीवन की आयु का साधारण मानदंड १०० वर्ष का वेद में माना गया है। इसलिए **"जीवेम शरदः शतम्"**[62] अर्थात् वेद में कहा है कि इस १०० वर्ष की अवस्था को चार विभागों में विभक्त करने से २५-२५ वर्ष का समय एक - एक आश्रम के लिए नियत हो जाता है।

चार अवस्थाओ का वर्णन इस प्रकार से है-

प्रथम अवस्था- २५ वर्ष की अवस्था को ब्रह्मचर्य का समय माना गया।

द्वितीय अवस्था- २६ से ५० वर्ष तक की अवस्था को गृहस्थ आश्रम का समय माना गया है।

तृतीय अवस्था- ५१ से ७५ वर्ष की अवस्था का समय वानप्रस्थ का और

चतुर्थ अवस्था- ७६ वर्ष से आगे की अवस्था का समय संन्यास आश्रम का माना गया है।

समय तो व्यतीत होता जा रहा है परंतु उस अवस्था को यदि आश्रम की मर्यादा एवं शिक्षा के अनुसार ही व्यतीत करोगे तो दिन प्रतिदिन आश्रम रूपी जीवन का यथोचित लाभ मनुष्य प्राप्त

[61] वैदिक सम्पदा पुस्तक पृष्ठ संख्या ३५१

[62] यजुः ३६।२४

कर सकेगा।अतः जो पहली अवस्था वह ब्रह्मचारी की होती है वह सद्गृहस्थ बन सकेगा जो सब सद्गृहस्थ होगा वही वानप्रस्थाश्रम के जीवन में उपासना, ध्यान ,स्वाध्याय, ब्रह्मचिन्तन को ठीक प्रकार से कर सकेगा और संन्यास के योग भी बन सकेगा। ऐसा संन्यासी संन्यास आश्रम में रहकर मोक्ष को प्राप्त कर सकेगा। मोक्ष ही मानव जीवन का परम लक्ष्य है अतः पूर्वोक्त शिक्षा को चारों वर्ण एवं चारों आश्रमों के आधार पर निर्धारित करना
चाहिए जिससे सभी मनुष्यों को परम लक्ष्य तक पहुंचने का मार्ग प्रशस्त हो सके।

पुरुषार्थ चतुष्टय अनुरूप शिक्षा -

वैदिक धर्म के अनुसार वेद के चार महा पुरुषार्थ माने जाते हैं जो कि हमारे जीवन के लिए अति आवश्यक हैं।[63]

- **धर्म**
- **अर्थ**
- **काम**
- **मोक्ष**

यह जीवन की प्रमुख लक्ष्य है। अतः शिक्षा के द्वारा इन चारों धर्म,अर्थ, काम और मोक्ष की पूर्ति का लक्ष्य होना चाहिए। पूर्वोक्त शिक्षाएं चारों वर्ण एवं चारों आश्रमों की दृष्टि से इस प्रकार की होवे कि धर्म की दृष्टि से भिन्न न हो तथा धर्मानुकूल ही हों।

प्रथम धर्म- धर्मानुकूल शिक्षा वह है जब मनुष्य अविद्यादि से मुक्त करने में सबके लिए समान रूप से देखता है, चलता है, कार्य को करता है, वेद के बताए मार्ग पर चलना ही धर्मानुकूल होता है। ब्राह्मण अपने तपोबल से ब्राह्मबल, विद्या एवं यज्ञानुष्ठानादि से सब को सुखी करने में प्रयत्नशील रहे। अविद्या दु:ख आदि क्लेशों में फंसने वाले कार्यों में अपनी विद्या शक्ति, सामर्थ्य का उपयोग न कर उसमें अधर्म पापाचरण समझे। इसी शिक्षा को धर्मानुकूल

[63] वैदिक सम्पदा पुस्तक पृष्ठ संख्या ३५२

शिक्षा कहा गया है। क्षत्रिय अपने शरीर बल, शास्त्र बल,दंड बल, नीति बल से प्रजा जनों को कष्ट न दें। अन्याय, अत्याचार एवं पीड़ा देने वाले दुष्टों से प्रजा जनों की रक्षा कर सुखी करें । ऐसी शिक्षा धर्मानुकूल है और जो अकारण ही दूसरों को अपने बल से पीड़ा पहुंचाते है यह अधार्मिक शिक्षा है।

द्वितीय अर्थ- इसी प्रकार व्यक्तियों का लक्ष्य केवल धन हरण करना ही न हो अपितु प्राणी मात्र की सेवा की दृष्टि से पदार्थों के अभाव को दूर करके उनकी सुविधा प्रदान करके न्याय लाभमात्र में संतुष्ट रहने की शिक्षा धर्मानुकूल है ऐसी जागरण प्रवृत्ति की शिक्षा होनी चाहिए। इसके विपरीत पदार्थों का अत्यधिक संग्रह करके अथवा पदार्थों का कृत्रिम अभाव प्रकट कर अभी अनियंत्रित लाभ को लूट की प्रवृत्ति अधार्मिक है एवं पाप है ऐसे प्रवृत्ति निर्माण की शिक्षा होनी चाहिए। इसी प्रकार से श्रम के अनुकूल वृद्धि के आश्रय से श्रम करके जीवन यापन करें यह धर्म अनुकूल है तथा श्रम को न करके या न्यूनतम करके अधिक परिश्रम की मांग करना पदार्थों के निर्माण को बंद करके सामान्य जीवन व्यवहार को क्षोभित करना अधार्मिक प्रवृत्ति है ।

ऐसी प्रवृत्तियों की शिक्षा को जिससे सबका जीवन व्यवहार सुखद हो अर्थात् धर्मानुकूल चलकर अर्थ का उपार्जन करने की शिक्षा प्राप्त हो। धर्म पूर्वक अर्थ उत्पन्न होना चाहिए। अर्थ को ही एकमात्र प्रधानता नहीं देनी चाहिए। यह सांसारिक सुख यदि धर्मानुकूल रहेंगे तो मोक्ष की भी प्राप्ति होगी अन्यथा नहीं। अतः महापुरुषार्थों के अनुसार धर्म,अर्थ, काम और मोक्ष की शिक्षा हो। ये चारों प्रकार की शिक्षा के आधार स्तंभ हैं । वर्तमान की शिक्षा में अर्थ और काम की ही प्रधानता है।

उपवेदानुकूल शिक्षा का स्वरूप –

चार वेदों के चार उपवेद हैं।[64]

- ऋग्वेद- आयुर्वेद ,
- यजुर्वेद- धनुर्वेद,
- सामवेद- गन्धर्ववेद
- अथर्ववेद- अर्थवेद चार ही उपवेद हैं। जीवन में इन चारों की शिक्षा की महती उपयोगिता है।

प्रथम उपवेद आयुर्वेद- आयु, जीवन, आरोग्यता, चिकित्सा, औषधी विज्ञान, वनस्पति विज्ञान आदिसब आयुर्वेद उपवेद के अंतर्गत हैं । इसका यथोचित ज्ञान होने से ही "**पश्येम शरदः शतम्, जीवेम शरदः शतम श्रृणुयाम शरदः शतम्, प्रब्रवाम शरदः शतम् ।।**"[65] अर्थात् शतवर्ष पूर्ण आयु पर्यंत नष्ट शक्ति, जीवन, प्राण - धारण शक्ति का बल, सामर्थ्य ,श्रवण शक्ति , वाक् शक्ति का क्षण बना रहे और "**भूयश्च शरदः शतात्**"[66] **के** अनुसार कायाकल्प विज्ञान द्वारा देह जरा अवस्था से रहित होकर नवयौवन युक्त शरीर को प्राप्त करें जिसे च्वयन विज्ञान दैनिक चर्या, ऋतुचर्या आहार-विहार चर्या ऋतुप्रभाव ज्ञान, भक्ष्याभक्ष्य-ज्ञान, पाक विज्ञान, विज्ञान वृक्ष, वनस्पति विज्ञान, उनका जीवन से संबंधित उपयोगिता, काल ज्ञान आदि अनेक विषय इस आयुर्वेद के अंतर्गत हैं। इनके अतिरिक्त ब्रम्ह जीव प्रकृति सृष्टि की रचना आदि दार्शनिक ज्ञान की शिक्षा आयुर्वेद के अंतर्गत प्राचीन ग्रंथों ने बताई है।

द्वितीय उपवेद धनुर्वेद- धनुर्वेद के अंतर्गत अस्त्र-शस्त्र, यंत्र विमान, भवन, नगर आदि निर्माण यंत्र, अस्त्र शास्त्रादि, संचालन ,शासन, सुरक्षा, प्रजा पालन, यातायात, न्याय, दंड नीति, द्वीपांतर गमन, लोकांन्तर गमन, भूगोल, खगोल ,अंतरिक्ष विज्ञान, विद्युत विज्ञान, यज्ञ विज्ञान

---

64 वैदिक सम्पदा पुस्तक पृष्ट संख्या ३५३

65 यजुर्वेद ३६/२५

66 यजुर्वेद ३६/२४

द्वारा, ऋतु में परिवर्तन, भूगर्भ शास्त्र, गति ज्ञान दिशा ज्ञान आदि अनेक विषयों का समावेस प्राप्त होता है।

तृतीय उपवेद गंधर्ववेद- के अंतर्गत गायन, वादन ,नृत्य ,नाट्य शास्त्र ,ज्ञान, अलंकार आदि का शिक्षण ध्वनियों का ,रागों का काल एवं ऋतुजनित प्रभाव , राग ,संगीत आदि से रोगों को दूर करने का ज्ञान संगीत का वृक्ष वनस्पति ,संगीत में शरीर की प्रवृत्तियों मन, बुद्धि, आत्मा पर प्रभाव, संगीत से परमानंद की प्राप्ति आदि अनेक विद्वानों का इसमें अंतर्भाव है । नाद ब्रह्म की संज्ञा देकर गंधर्ववेद का क्षेत्र ही बहुत विस्तृत हो जाता है।

चतुर्थ उपवेद अर्थवेद- के अन्तर्गत उपरोक्त विधाओं के अतिरिक्त जो विधाएँ हैं उनका जो कहा गया सामयिक, सद्योजत आवश्यकताओं की पूर्ति का कार्य है उसकी शिक्षा है । इस प्रकार से पूर्व उक्त चारों शिक्षा प्रकारों के साथ उपवेदानुकूल शिक्षा का वर्ण एवं आश्रमानुकूल न्युनाधिक ज्ञान का पाठ्यक्रम में स्थान होना चाहिए ।

वेदों के पाठ्यक्रम शिक्षा की द्वितीय रूपरेखा-

ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद यह वेदों का क्रम है।

ऋग्वेद का सम्बंध अग्नि से है। **“अग्नेः ऋग्वेदः”** अग्नि से ऋग्वेद प्रकट हुआ है । अग्नि का संबंध पृथ्वी से है ।

यजुर्वेद का संबंध वायु से है। **“वायोर्यजुर्वेदः”** वायु से यजुर्वेद प्रकट हुआ। वायु का संबंध अंतरिक्ष से है।

सामवेद का संबंध सूर्य से है। **“सूर्यात्सामवेद”** सूर्य से सामवेद प्रकट हुआ। सूर्य का संबंध द्युलोक से है।

अथर्ववेद का संबंध आंगिरस से है । आंगिरस का संबंध शरीर के अंगों का जो रस, जीवन रूप आत्मा है और आत्मा का परमात्मा से सम्बंध है। यही अध्यात्म क्षेत्र है। अर्थात् द्वितीय रूपरेखा के अनुसार त्रिभुवन, त्रिलोकी का, ब्रह्मांड का ,ब्रह्मांड की तीनों ज्योतियों का

एवं आत्मा परमात्मा का ज्ञान वर्ण एवं आश्रमों की योग्यतानुसार शिक्षा के स्वरूप को निर्धारित करना चाहिए।

वैदिक शिक्षा का अनुशासन प्राथमिक क्षेत्र मातृ परिधि -

वैदिक शिक्षा के अनुशासन की प्रणाली का मूल आधार "**मातृमान् पितृमान् आचार्यवान्**

पुरुषो वेद"[67] में कहा है कि धार्मिक माता, धार्मिक पिता और आचार्यवान ये तीन शिक्षक होते हैं । इनमें श्रेष्ठ अत्यंत शक्तिशाली एवं प्रधान माता ही है। माता की शिक्षा से रहित संत्तानों की उतनी शीघ्र उन्नति नहीं होती जितनी कि माता से शिक्षित संतानों की होती है। पूर्ण शिक्षित व्यक्तित्व का विकास माता के द्वारा ही संभव है।

निरुक्त में माता को **"माता निर्माता भवती"** अर्थात् माता निर्माता होती है । बालक के मन, बुद्धि, चित्त, प्रवृत्ति आदि एवं संस्कारों का निर्माण करती है । जो माताएं धर्माचरण युक्त व्यवहार करती हैं और विशेष रूप से विदुषी भी है ऐसे ही माताएं संतान निर्माण एवं विकास के लिए योग्य होती हैं। गर्भावस्था से जन्म के पांच वर्ष तक के समय में ही माता की बालक के लिए शिक्षा है। यदि माता सुशिक्षिता, विदुषी, धर्माचरण वाली होगी तो वह अपनी सन्तान को सुसंस्कारयुक्त, एवं सुशिक्षित बनाती है।

मंत्र ब्राह्मण में कहा है कि- "**अंगादंगात्संस्त्रवसि ह्रदयादधि जायसे।"**[68] अर्थात् माता के अंग-अंग से संतान के अंगों की प्राप्ति होती है और ह्रदय से जो आत्मा ,मन एवं चेतन का स्थान है उससे संतान में आत्मा, मन एवं चेतन का संचार होता है । उससे भी अधिक प्रभाव माता के विचारों का संतान की बुद्धि मन, चित्त एवं संस्कारों के निर्माण पर भी पड़ता है।

---

[67] शतपथ ब्रा०.१४/६/१०

[68] मंत्र ब्रा०१/५/१६

इसलिए संतान की आधारभूत शिक्षा का तथा प्रारंभिक शिक्षा का सूत्रपात गर्भाधान संस्कार से कर्णवेध संस्कार तक माना जाता है।

वैदिक शिक्षा का द्वितीय क्षेत्र पितृ परिधि -

सन्तान की ६ वर्ष की अवस्था से ८ वर्ष की अवस्था तक शिक्षा पिता द्वारा होनी चाहिए। इस निमित्त बालक, बालिकाओं का यज्ञोपवीत संस्कार करके पिता गायत्री मंत्र का उपदेश देकर के तथा संध्या, उपासना, अग्निहोत्र सिखावे जिससे संतान नित्य प्रणव का जाप गायत्री का जाप सन्ध्या तथा अग्निहोत्र करे। संध्या अग्निहोत्र की शिक्षा के अतिरिक्त विकास संतान को व्यवहारिक शिक्षा सिखाता है। जैसे सभ्य, विनम्र, सुशील, आज्ञापालक, संभाषण, पटु, मिथ्या विश्वास ,अधर्मादि में न फंसने वाली बनने की शिक्षा देता है।

वैदिक शिक्षा का तृतीय क्षेत्र गुरुकुल -

शिक्षा का तीसरा क्षेत्र गुरु की आचार्य की परिधि, गुरुकुल में रहकर विद्या अध्ययन करना। आजकल गुरुकुल नहीं हैं, विद्यालय हैं विश्वविद्यालय हैं। गुरुकुल और विद्यालय में बहुत अंतर है गुरुकुल नगरों से नौ से दस किलोमीटर दूर शांत वातावरण के साथ नदी और पर्वतों के समीप आदि पशुओं से समृद्धि स्थानों पर होते थे। उनके गुरुजन ,शिक्षक ,अध्यापक , अचार्य वे ही हो सकते थे जो पूर्ण विद्या युक्त, धार्मिक तथा सदाचारी हों, दुष्ट आचार्य धार्मिक स्त्री और पुरुष चाहे कितने ही विद्वान हों वे गुरुकुल में शिक्षक नहीं हो सकते थे। गुरुकुल में छ: या आठ वर्ष की अवस्था में संत्तानों को आचार्य के समीप भेज दिया जाता है। जैसे ही गुरुकुल में भर्ती करते समय आचार्य ब्रह्मचारी के सम्मुख एक उपदेश देते हुए कहते हैं कि “**कर्म कुरु दिवा मा स्वाप्सी:, क्रोधानृते वर्जय, ऊपरि शय्यां वर्जय**” आदि। वहाँ नव प्रविष्ट हुए बालकों और बालिकाओं का यज्ञोपवीत संस्कार एवं वेदारंभ संस्कार होता था। यज्ञ एवं संस्कारों द्वारा संस्कारों की जागृति संत्तानों में की जाती थी। यज्ञोपवीत मेखला एवं दंड धारण

कराया जाता था। गुरुकुल में वेद वेदांतो की शिक्षा होती थी। गूढ़ से गूढ़ विद्याएं दी जाती थी। संध्या वंदन अग्निहोत्री यह दैनिक कर्म नित्य अनिवार्य थे ।

वैदिक गुरुकुल की अनुशासन शिक्षा प्रणाली –

अनुशासन शिक्षा वास्तव में शिक्षा है ही नहीं । वह तो कुशिक्षा है। कुशिक्षा के प्रचलन से राष्ट्र का अनुशासन भी नष्ट होता है प्राचीन ऋषियों ने इसी दृष्टि से जीवन की प्रथम अवस्था जो शिक्षा ग्रहण करने की है उसे ब्रह्मचर्य आश्रम की संज्ञा दी है । ब्रम्हचर्य शब्द दो अर्थों में ग्रहण किया जाता है प्रथम अर्थ संयम ,आचार, वृत्तियों का विरोध तपस्वी जीवन के भाग का बोधक है। यही अर्थ प्रधान रूप से ग्रहण किया जाता है । इसी के साथ अर्थात् संयमी, तपस्वी जीवनपूर्वक विद्याओं का अध्ययन करना दूसरा अर्थ है ।

अर्थात् ब्रह्मचर्य काल या ब्रह्मचर्य आश्रम में रहकर प्रधान रूप से संयमी, तपस्वी आदि रहकर वेद विद्या को ग्रहण करना आवश्यक था। जो असंयमी हो, आचार रहित हो उसे केवल मात्र विद्याओं का बोध कराना गुरुकुलओं का उद्देश्य नहीं था। ब्रम्हचर्य पूर्वक विद्या अभ्यास के लिए निम्न अनुशासन गुरुकुल के प्राचीन समय में प्रचलित थे । जब गुरुकुल में बालक प्रविष्ट होते थे तो यज्ञोपवीत एवं वेदारंभ संस्कारों द्वारा निम्न प्रकार के अनुशासन का बोध कराया जाता था। उल्लेख करते हुए तैत्तिरीयोपनिषद् में अनुशासन के विषय में आचार्य शिष्य से कहता है कि; "**सत्यं वद धर्मं चर स्वाध्यायान्मा प्रमदः।' "सत्यन्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्।"**

"कुशलान्न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्याम् न प्रमदितव्यम्।" ...

"मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्य देवो भव । अतिथि देवो भव।...एष आदेशः, एष उपदेशः, एषा वेदोपनिषद्, एतदनुशासनम्"।[69]

[69] तैत्ति. प्रपा० ७, अनु० ११, कं० १, २, ३, ४

अर्थात् तू सदा सत्य बोला कर, धर्म का आचरण कर, स्वध्याय करने में प्रमाद रहित हो, आचार्य के लिए प्रिय धन देकर विवाह करके संतानोत्पत्ति कर, प्रमाद से कभी सत्य को मत छोड़ प्रमाद से कभी धर्म का त्याग मत कर ,प्रमाद से आरोग्य और चतुराई को मत छोड़, प्रमाद से उत्तम ईश्वर की वृद्धि को मत छोड़ ,प्रमाद से पढ़ने और पढ़ाने को कभी मत छोड़, देव अर्थात् विद्वान और माता पिता की सेवा में प्रमाद मत कर, जैसे देव अर्थात् विद्वानों का सत्कार करें उसी प्रकार माता-पिता आचार्य और अतिथि की सेवा किया कर।

वैदिक शिक्षा की वर्तमान शिक्षा प्रणाली में उपादेयता-

आधुनिक शिक्षा प्रणाली वैदिक शिक्षा प्रणाली से बिल्कुल उपलब्ध होती है। फिर भी आधुनिक समस्याओं का हल निकालने के लिए प्राचीन शिक्षा का ही उपयोग करते हैं।

जैसे श्रद्धा, भक्ति सेवा, आत्म आदर, अनुशासन ,सादा जीवन,उच्च विचार, ब्रह्मचर्य, नैतिक बल आदि सबको अनुकरण करके आधुनिक शिक्षा की उपयोगिता को समझा जा सकता है। इन्हीं आदर्शों के माध्यम से ही समस्त समस्याओं का निराकरण निश्चित हो जाता है। और छात्र भी आदर से गुणों के माध्यम से समस्त संसार में वैभव समृद्धि प्राप्त कर सकेंगे।

हमारे आधुनिक शिक्षा वैदिक शिक्षा की भांति विदेशी छात्रों को आकर्षित कर सकेगी। जिससे भारतीय शिक्षा उच्च कोटि में गिनी जा सकती है। विशेष रुप से वैदिक शिक्षा के अनुरूप से अत्यधिक आधुनिक शिक्षा में प्रासंगिकता की प्राप्ति है। वैदिक शिक्षा के मुख्य उद्देश्य निम्न थे जैसे गुरु शिष्य संबंध, अनुशासन व्यवस्था, उपनयन संस्कार ,समावर्तन संस्कार, विनम्रता, नैतिकता कार्यों की अनुभूति, गुरु,माता पिता आदि की सेवा सुश्रुषा आदि कर्मों को वर्तमान शिक्षा प्रणाली में समाहित करके वर्तमान शिक्षा को पुनः सर्वोपरि शिक्षा के रूप में देख सकते हैं।

द्वितीय अध्याय
बौद्ध कालीन शिक्षा प्रणाली

गौतम बुद्ध का जन्म छठी शाताब्दि ई.पूर्व लुंबिनी वन में हुआ था। जो आधुनिक रुम्मिनदेई नेपालो में स्थित है। बोधगया में सम्यक् सम्बोधि प्राप्ति के अन्नतर सारनाथ के इसिपतन (ऋषिपतन)मृगदाव में अपना प्रथम उपदेश पंचवर्गीय भिक्षुयों को दिया था। जिसे पालि साहित्य में धम्मचक्रप्रवर्तन के नाम से जाना जाता है। शिक्षण राज्य द्वारा दिया जाए या शिक्षण राज्य का एक कर्तव्य या विहित कर्म है। यह एक प्रकार से आधुनिक विचार है।

यूरोप में प्राचीन काल में यह काम ईसाई गिरजे करते थे। भारत में यह कार्य विविध धर्मपंथों और संस्थाओं का था कि वे अपनी शिक्षा पद्धतियां बनाए और चलाएं। इनमें ब्राह्मण प्रणाली सबसे पुरानी है। यह शिक्षणपरंपरा वैदिक काल से आज तक चली आ रही है। इसमें एक गुरु और थोड़े से शिष्यों का दल मुख्य था। इसे गुरुगृह कहते थे। बौद्ध प्रणाली की परंपरा विहारों की है। उसकी पूर्ति भिक्षु जीवन से संबद्ध है। दोनों का अन्तर स्पष्ट है। इससे दो प्रकार की विकास रेखाएं निकली है। प्रोणमुखर्जी लिखते हैं कि ब्राह्मण प्रणाली में गृहस्थ के वातारण की आवश्यकता होने से गुरुगृह विस्तृत बनकर बड़े विश्वविद्यालयों का रूप न ले सके। बौद्ध प्रणाली में शिक्षण कई शिक्षकों के सांघिक स्वामित्व की संस्था बन गया।

इसीलिए बौद्ध शिक्षण प्रणाली में बड़े.बड़े विहार एवं विश्वविद्यालय जैसे नालंदाए वलभीए विक्रमशिलाए जगद्दल और ओदंतपुरीए डेढ़ हजार वर्षों तक जो विकास होता आ रहा था उसकी अंतिम अवस्था व्यक्त करते हैं। इसका इतिहास हमें शतियों में विखरे और कभी-कभी मिलने वाले कुछ प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों से मिलता है और फिर कई शाताब्दियों की खाई पार करके चीनी और तिब्बती स्त्रोतों से प्राप्त होता है। वस्तुतः बौद्ध शिक्षण का इतिहास बौद्ध मठ विहारों और भिक्षु संघों के इतिहास का ही एक पक्ष है। इसमें इन विहारों के भीतर

के बौद्धिक जीवन की प्रक्रिया व्यस्त होती हैए इस जीवन की क्रमशः प्रगतिपरक समृद्धि कीए उसके शतियों तक विस्तृत और उदार प्रभाव की उसके विकसित होने की फैलने की। भिक्षु के लिए प्रशिक्षण की प्रणाली से आरंभ होकर नई बौद्धिक आवश्यकताओं और रुचियों के अनुसार उसका क्षेत्र और उद्देश्य बढ़ता गया। उसे नए मानसिक क्षितिज प्राप्त होते गए। अंततः विहार एक ऐसी जगह बन गए जो केवल मठबद्ध मनन और धर्मचितन के स्थान ही नहींए अपितु संस्कुति और ज्ञान की पीठ बन गए। उनमें से कुछ विश्वविद्यालय हो गए[70] परन्तु यह इतिहास जो वेदोत्तर प्राचीन भारत सके सारे कालखंड में फैला है ईसा की बारहवी शती में आकर रुक जाता है। इस लंबी कहानी की समाप्ति पूर्वी भारत बंगाल और विहार में बख्तियार खिलजी के विज अभियानों के साथ होती है। जब बौद्धों ने मठों में संयम जीवन बिताने का निश्चत किया प्रायः ईसा.पूर्व चौथी शती में तब यह प्रश्न उठा है कि जो नया दीक्षित है और जिसने मठ में प्रवेश किया है।[71]

बौद्ध शिक्षा को जानने से पहले बौद्ध धर्म की उत्पत्ति एवं आधार को सुस्पष्ट करते हैं। भिन्न-भिन्न विद्वानों के विचारों से बौद्ध धर्म एक नया धर्म नहीं है। अपितु यह तो हिंदू धर्म का ही पूरक माना जाता है। बौद्ध धर्म में भारतीयों के उत्थान का धर्म है जो तथा धार्मिक, दार्शनिक, सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में प्रतिपादित हुआ है। होपकिंस के मतानुसार धर्म के प्रवर्तक ने न ही किसी को नैतिक शिक्षा दी, न ही जन सेवावादी थे और न ही ब्राह्मण पुरोहितों का पतन करने की योजना बनाई एवं न ही भिक्शिओन को आविश्क्रित किया[72] महात्मा बुद्ध के जन्म के पहले से ही भारतीय अध्यात्म बौद्ध धर्म की ओर अग्रसर होते जा रहे थे और उत्तरोत्तर यज्ञ कर्मकांदो की ओर भी प्रेरित होते जा रहे थे।

उपनिषद शिक्षा के संदर्भ में कहा गया है कि उपनिषदों का प्रारूप प्रादुर्भाव जिज्ञासुओं को आध्यात्मिक चिंतन का लाभप्रद था। उपनिषद अध्यात्म ने ब्रह्म को प्रतिपादित किया था

---

[70] पी.वी. बापट बौद्ध धर्म के २५०० वर्ष पृ. सं. ११२
[71] वही पृ. सं. ११३
72 भारतीय शिक्षा का इतिहास,मुनेश्वर प्रसाद, पृ. सं.११६

जो कि सर्वत्र विद्यमान रहता था। मनुष्यों का उद्धार तभी हो सकता है जब वह ब्रह्म को समझ सकेंगे। ब्रह्म को प्राप्त करने की विधि आध्यात्मिक रूप से ही होती है तथा आत्मा ही इसका मुख्य बिंदु है ।[73] आध्यात्मिक चिंतन प्रणाली में जगत को भिन्न समझा गया है ।

फलस्वरुप भारतीय अध्यात्म में नैराश्यवाद की भावना प्रादुर्भाव हुई जो कि बौद्ध धर्म की मुख्य आधारशिला पर प्रदर्शित थी। उपनिषदों में यज्ञ की महिमा के अतिरिक्त तपस् एवं अध्यात्म चिंतन ब्रह्म तथा आत्मा के मार्ग का भी वर्णन प्राप्त था। परंतु उपनिषदों का आत्मज्ञान केवल ऋषि-मुनियों को ही संभव होता था किंतु जन साधारण मनुष्यों के लिए सरल मार्ग न होने के कारण से बुद्ध ने सरल मार्ग के रूप में प्रेरित किया था । "तात्विक" प्रश्नों का विवेचन व्यवहारिक रूप में व्यर्थ समझकर बुद्ध ने चार आर्य शक्तियों का प्रादुर्भाव किया था कि जिससे मनुष्य भली-भांति ज्ञान को प्राप्त कर सकें। इन चार आर्य सत्यों के माध्यम से अनासक्ति, तृष्णा, दुःख, मानसिक शान्ति, ज्ञान, प्रज्ञा तथा निर्माण आदि को प्राप्त कर सकें । महात्मा बुद्ध का ज्ञान रूपी भंडार आर्य सत्यों में ही प्राप्त है।

- **जीवन दुखमय है**
- **दुख के कारण हैं**
- **दुखों का अंत संभव है**
- **दुखों के अंत के मार्ग हैं [74]**

महात्मा बुद्ध ने जनसामान्य को इन चार आर्य सत्य के उपदेश के माध्यम से प्रादुर्भूत किया था। जैसा कि पहले कहा गया है कि बौद्ध धर्म के चार आर्य सत्य ही ज्ञान के मुख्य आधार हैं।[75] महात्मा बुद्ध ने इस जगत को दुखमय माना तथा राग, द्वेष, जरा आदि कारणों के माध्यम से ही बुद्ध ने गृह त्याग किया था। और कहा है कि वृद्ध होने पर मनुष्य का जीवन सुखमय प्राप्त हो जाता है। महात्मा बुद्ध होने के कारण से उन्होंने अपना जीवन दुखों का पूरा

---

[73] भारतीय शिक्षा का इतिहास,मुनेश्वर प्रसाद, पृ. सं.११
[74] हरिशंकर शुक्ल, पालीनिबंधावलि, पृ. सं.७
[75] बलदेव उपध्याय, बौद्ध-दर्शन-मीमांसा, पृ. सं. ५०

की माना था महात्मा बुद्ध ने नैरास्यवाद की भावना को चार आर्य सत्य पर ही आधारित करके समस्त जनों को ज्ञान प्रदर्शित किया था।[76]

दूसरा आर्य सत्य दुख का कारण है। इसके संबंध में १२ निदान एवं भाव चक्र का वर्णन प्राप्त किया है ।

- **दु:ख का कारण।**
- **जाति है- जाति का कारण ।**
- **भव है - भव का कारण ।**
- **उपादान है- उपादान का कारण।**
- **तृष्णा है- तृष्णा का कारण ।**
- **वेदना है - वेदना का कारण ।**
- **स्पर्श है- स्पर्श का कारण ।**
- **षडायन है- षडायन का कारण।**
- **नाम रूप है - नाम रूप का कारण।**
- **विज्ञान है- विज्ञान का कारण।**
- **संस्कार है - संस्कार का कारण।**
- **अविद्या है - अविद्या का कारण**।[77]

इन द्वादश निदानों को मुख्य रूप से अयोध्या का कारण माना गया है क्योंकि जहां मिथ्या है वहां अविद्या निश्चित रूप से प्राप्त होती है। तथा समस्त दुखों को उत्पन्न करती है। इन द्वादश निदानों को नष्ट करने के लिए ज्ञान को धारण करना अनिवार्य होता है।

तृतीय आर्य सत्य दुख निरोध या निर्माण है।[78]

---

[76] रामचंद्र राटी, दु:ख मुक्ती की साधना, पृ सं. १०२

[77] बलदेव उपध्याय, बौद्ध-दर्शन-मीमांसा, पृ सं. ५२

[78] मनीष मेश्राम, बौद्ध दर्शन उद्भव एव विकास, पृ. सं. ३७

भगवान बुद्ध ने तृतीय आर्य सत्य में दुख की निवृत्ति का कारण माना है जिसके माध्यम से हमारे समस्त दुखों को दूर कर सकते हैं। भगवान बुद्ध ने दुख निर्माण अर्थात दुखों का अंत होना, न कि जीवन का अंत। इस तृतीय आर्य सत्य में राग द्वेष आदि से निवृत्ति की अवस्था प्राप्त होती है। अगर जो इन राग, द्वेष आदि पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लेता है तो वह दुख बंधनों से छूटकर सांसारिक विषयों से मुड़कर मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

चतुर्थ आर्य सत्य दुख निरोधी मार्ग है। भगवान बुद्ध ने दुख निरोध आर्य सत्य का उल्लेख दुख उत्पत्ति को नष्ट करने के लिए प्रदर्शित किया है। बौद्ध धर्म में इन्हें अष्टांग मार्ग के नाम से जाना जाता है। तथा इसको धारण करने से मानव जीवन मोक्षत्व को प्राप्त कर लेता है। अतः इस अष्टांगमार्ग के आठ अंग निम्न रूप से प्रदर्शित हैं-

- **सम्यक् दृष्टि (समाडिट्ठी)**
- **सम्यक् संकल्प(सम्मा संकल्प)**
- **सम्यक् वाक् (सम्मा वाचा)**
- **सम्यक् कर्मान्त(सम्मा क्रमन्त)**
- **सम्यक् आजीवन (सम्मा आजीव)**
- **सम्यक् व्यायाम (सम्मा व्यायाम)**
- **सम्यक् स्मृति(सम्मा सति)**
- **सम्यक् समाधि(सम्मा समाधि).**[79]

अष्टांग मार्ग के तीन अंग मुख्य हैं प्रज्ञा, शील और समाधि प्रज्ञा तथा सदाचार का अत्यधिक संबंध प्राप्त होता है।क्योंकि ज्ञान के बिना सदाचार का होना बिल्कुल संभव नहीं हो सकता है। तथा पूर्ण जान से समाधि की आवश्यकता होती है। समाधि की अवस्था में पूर्ण ज्ञान से अविद्या का नाश करके दुख बंधनों को पूर्णतया से नष्ट कर देता है। इसी कारण से बुद्ध ने

[79] स्वामि द्वरिकादास शास्त्री, मज्झिमनिकाय, पृ. सं., २७१

ज्ञान को दर्शाया है कि जिससे न कष्ट होता है न दुख होता है।[80] इन अष्ट अंगों के माध्यम से मनुष्य को दुख रूपी जीवन से मुक्त होकर सुख पूर्वक विचरण करने की प्राप्ति कर लेता है। ऐसा भगवान बुद्ध ने अपने इन चार आर्य सत्यों में वर्णन किया है।

इस संदर्भ में जीवात्मा, आवागमन, दुख बंधनों से निवृत्ति, मोक्ष की प्राप्ति का वर्णन भी वैदिक धर्म में भी प्रतिपादित थे।[81]

बौद्ध धर्म एक सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय की भावना रखता था। जिससे समस्त जन सुखपूर्वक व्यतीत होते थे ।

अतः आध्यात्मिक रूप में प्रदर्शित था मोक्ष की प्राप्ति योग जनों के अलावा सामान्य जन भी अष्टांगिक मार्ग के माध्यम से प्राप्त कर लेते थे।[82]

बौद्ध एवं ब्राह्मणीय शिक्षा प्रणाली -

समानता -

बौद्ध शिक्षा प्रणाली ब्राह्मणीय शिक्षा प्रणाली के समान ही प्रतिपादित मानी जाती थी। बौद्ध एवं ब्राह्मणीय शिक्षा के शिलाधार एक ही प्रतिपादित होते थे। बौद्ध एवं ब्राह्मण शिक्षा में संघ एवं भिक्षुओं के रूप में विद्यमान रहते थे। संघ का तात्पर्य वानप्रस्थ एवं सन्यासियों का स्थान होता है जो कि मोक्ष की प्राप्ति में संलग्न रहते थे।[83] ब्राह्मण ब्रह्मचारियों के रूप में प्रतिपादित होते थे जो कि आजीवन ब्रह्मचारी रहकर नैष्ठिक दीक्षा के साथ विचरण किया करते थे। बौद्ध भिक्षुओं का भी विवरण ब्राह्मणीय शिक्षा के अनुरूप ही हुआ करता था जैसे आवास से लेकर भोजन रहन-सहन पठन-पाठन तक तथा हिंसा से दूर रहते थे। भिक्षुओं तथा ब्रह्मचारियों का मुख्य उद्देश्य केवल मोक्ष मार्ग का ही होता था। क्योंकि समस्त दुखों से निवृत्त होकर भवसागर को पार करना एवं ब्रह्म को प्राप्त करना आदि मुख्य कर्तव्य होता था।

---

80 भिक्शु जगदीश कश्यप, धम्मसंगणी, पृ. सं., २३
81 स्वामि द्वरिकादास शास्त्री, सच्चसंघो, पृ. सं., ६१
82 ब्रहमदेव नारायण, वियज्यवाद पृ सं., १५२
83 भारतीय शिक्षा का इतिहास,मुनेश्वर प्रसाद, पृ. सं.,१४४

विभिन्नता -

बौद्ध शिक्षा प्रणाली एवं ब्राह्मणीय शिक्षा प्रणाली अनेकों रूपो के माध्यम से विभिन्नता प्राप्त होती थी। ब्राह्मणीय शिक्षा प्रणाली में प्रारंभिक शिक्षा गृह पर ही माता- पिता एवं भाई - बहन के माध्यम से शिक्षा प्रदान की जाती थी। तत्पश्चात् गुरुकुल एवं आश्रम में बालक को भेजकर शिक्षा दी जाती थी। तथा ब्राह्मण शिक्षा को बौद्ध ग्रंथों में वैयक्तिक रूप में माना जाता था। किंतु ब्राह्मणीय शिक्षा सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय की कामना करती है।[84]

बौद्ध शिक्षा प्रणाली में बौद्ध शिक्षा प्रारंभ से ही बौद्ध संघों में दी जाती थी। बौद्ध भिक्षु लोग अपना गृह त्याग करके पूर्ण रूप से संघों को समर्पित हो जाते थे और संघों के नियम अनुसार जीवन व्यतीत किया करते थे। उनकी शिक्षा-दीक्षा से लेकर सभी कार्य संघों में ही पूर्ण हुआ करते थे।

बौद्ध विद्यालयों की पाठ्य शिक्षा ब्राह्मणी विद्यालयों से भिन्न थी। तथा वैदिक ग्रंथों का अध्ययन नहीं किया जाता था। बौद्ध विद्यालयों में शिक्षक ब्राह्मण न रकर जनसामान्य के रूप में सुयोग्य शिक्षक एवं उपाध्याय होते थे। वह शिक्षा समान रूप से सामान्यजनों को श्रद्धा पूर्वक प्रदान की जाती थी। अतः बौद्ध शिक्षा ब्राह्मणीय शिक्षा के तुल्य किसी भी रूप में वर्णित नहीं हो सकती थी।

बौद्ध शिक्षा प्रणाली का प्रारूप -

बौद्धिक धर्म में समयानुसार भिक्षुओं के माध्यम से एक नवीन शिक्षा प्रणाली का उदय हुआ जिसे बौद्ध शिक्षा प्रणाली कहा जाता था। इस बौद्ध धर्म का आविर्भाव वैदिक धर्म के पश्चात हुआ था। भारत देश में बौद्ध धर्म का मुख्य उद्देश था कि बौद्ध शिक्षा का विस्तार, बौद्ध धर्म का प्रचार, प्रसार , सांसारिक दु:खों से निवृत्ति तथा आध्यात्मिक शिक्षा से मोक्ष की प्राप्ति, शील एवं चरित्र का निर्माण करना आदि ।

---

[84] स्वामी द्वरिकादास शास्त्री, संयुत्तिकाय, पृ सं., ३४५

बौद्ध धर्म का ज्ञान सर्वप्रथम बौद्ध शिक्षा के त्रिपिटकों से प्राप्त होता था। त्रिपिटक क्या हैं ,जैसे वैदिक काल में वेदों की मुख्य भाषा संस्कृत होती थी वैसे ही त्रिपिटकों में बौद्ध ग्रंथों की भाषा पाली होती थी ।[85] इसी के माध्यम से बौद्ध शिक्षा का अनुकरण किया जाता है । इस प्रकार बौद्ध काल की शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत हम शिक्षा के मुख्य -मुख्य प्रारूपों के अविलक्षणों को सविस्तार पूर्वक समझने का प्रयास करते हैं।

बौद्ध शिक्षा प्रणाली का विस्तार एवं राशि -

बौद्ध शिक्षा प्रणाली का विस्तार एवं राशि के समक्ष में तीन उल्लेख प्राप्त होते हैं ।
पहला शिक्षा प्रणाली पर बौद्ध संधों का आधिपत्य रहना।
दूसरा बोध शिक्षा पर शासन का संरक्षण प्राप्त करना ।
तीसरा बौद्ध शिक्षा की प्राथमिक शिक्षा निःशुल्क तथा उच्च शिक्षा शुल्क सहित दी जाती थी।
बौद्ध शिक्षा प्रणाली पर बौद्ध संधों का आधिपत्य भिक्षुओं के माध्यम से आधीन में थी इस शिक्षा प्रणाली पर किसी विशेष का नहीं अपितु संधो का आधिपत्य रहता था कि इन्हीं के माध्यम से शिक्षा व्यवस्था थी ।

बौद्ध शिक्षा पर शासन का संरक्षण प्राप्त करना होता था । वैदिक शिक्षा की अपेक्षा बौद्ध काल की शिक्षा पर प्रशासन का सहयोग अत्यधिक प्राप्त होता था। बौद्ध शिक्षा का विस्तार के लिए राजाओं ने भवन, नगर, गांव सभी का विकास किया था ,जिससे कि बौद्ध काल की शिक्षा प्रणाली में सभी को एक समान शिक्षा देने के लिए द्वार हमेशा खुले रहते थे तभी इस समय बौद्ध शिक्षा का अधिकार लागू हुआ तथा विकास भी हुआ था।
बौद्ध कालीन प्राथमिक शिक्षा का प्रबंध है निःशुल्क किया गया था तथा उच्च शिक्षा का प्रबंध शुल्क सहित हुआ करता था।

[85] मनीश मेश्राम, बौद्ध धर्म का उद्भव एव विकास, पृ, सं., ३६

बौद्ध शिक्षा प्रणाली की संरचना एवं संगठन -

बौद्ध शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत शिक्षा के तीन प्रारूपों के स्तरों में दर्शाया गया है बोध शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत प्राथमिक शिक्षा का प्रारूप वैदिक शिक्षा के तुल्य ही विस्तृत था जिसमें सभी वर्गों के बच्चों को पढ़ने का अधिकार था जिसके लिए सभी बच्चे पढ़ने के लिए आया करते थे।

जैसे गुरुकल शिक्षा प्रणाली की व्यवस्था गुरुकुलों आश्रमों एवं आचार्यकुलमों में हुआ करती थी वैसे ही बौद्ध शिक्षा प्रणाली की व्यवस्था भी मठों एवं विहारों में हुआ करती थी। जिसमें बालक ५ वर्ष के बाद अर्थात् ६ वर्ष से लेकर १२ वर्ष पर्यंत शिक्षा ग्रहण करता था। [86]

जब बच्चों का मठों एवं विहारों में प्रवेश होता था तब बच्चों का वैदिक संस्कार उपनयन की तरह पबज्जा संस्कार होता था। इस पबज्जा संस्कार का वर्णन बौद्ध ग्रंथ महावग्ग में सविस्तार विधि पूर्वक वर्णन प्राप्त होता है।

बौद्ध शिक्षा प्रणाली में पवच संस्कार का भजन अर्थात बोध शिक्षा अध्ययन के लिए बाहर जाना क्योंकि उस समय बालक हरिद्वार छोड़कर मठों एवं विहारों में पढ़ने जाते थे। तभी प्रवेश के उपरांत होने वाला संस्कार पबज्जा संस्कार के रूप में जाना जाता था ।इसके उपरांत उन बालकों को पीले वस्त्र तथा हाथों में दंड धारण कराया जाता था। तत्पश्चात वह बालक गुरु के चरण स्पर्श करके गुरु के आदेशानुसार गुरु के सानिध्य में ही बैठ जाते थे की जिससे उन्हें सरणत्रयी अर्थात् सरणत्रय तीन प्रणों का उच्च स्वर में उच्चारण कराया जाता था। [87]वे तीन प्रण इस प्रकार से हैं -

- **बुद्धं शरणम् गच्छामि।**
- **धम्मं शरणम् गच्छामि।**
- **संघ शरणम् गच्छामि**।[88]

---

[86] पी.वी बापट, बौद्ध धर्म के २५०० वर्ष, पृ. सं ११८
[87] पी.वी बापट, बौद्ध धर्म के २५०० वर्ष, पृ. सं १२०
[88] भिक्षु धर्मरशित, सुत्निपात, पृ.सं., २४

तत्पश्चात् गुरु शिष्य को दस उपदेश देता था कि जिसे " दस सिक्खा पदानि " के रूप में जाना जाता था। जैसे - अहिंसा पालन ,शुद्ध आचरण ,सत्य बोलना ,शुद्ध आहार, मादक पदार्थों का सेवन न करना, निंदा न करना, श्रृंगार न करना, नृत्य एवं संगीत से दूर रहना, किसी की वस्तु को ग्रहण न करना एवं सोना, चांदी, हीरा, जवाहरात आदि कीमती दान न लेना।[89] गुरु इन व्रतों के पालन देने के उपरान्त ही बालक को मठ अथवा विहार में प्रवेश दिया जाता था। इसके उपरान्त ही बालक को श्रवण अथवा सामनेर के रुप में भी जाना जाता था।

बौद्ध शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत उच्च शिक्षा का प्रारूप-

बौद्ध शिक्षा प्रणाली काल में उच्च शिक्षा प्रारूप में कुछ छात्र श्रवण अथवा सामनेर गृहस्थ जीवन में प्रवेश रुचि रखते थे किंतु कुछ भिक्षुओं के वेश में ही बौद्ध शिक्षा प्रणाली का प्रचार -प्रसार करते रहते थे लेकिन भिक्षुओं की स्थिति में जब बालक आता है तो उसे दस प्रतिज्ञाओं के अतिरिक्त आठ प्रतिज्ञाओं को और धारण कराया जाता था कि जिससे उसे भिक्षुओं की शिक्षा का लाभ लेने के लिए मठों एवं विहारों में प्रवेश दिया जाता था तो उसे उपसंपदा संस्कार के रूप में जाना जाता था।

यह उपसम्पदा संस्कार दस भिक्षुओं के सानिध्य में होता था जिससे कि वे सर्वप्रथम श्रवण भिक्षु का वेश धारण करता था तत्पश्चात प्रणाम आदि की क्रियाएं करके भिक्षुओं के समक्ष ही बैठ जाता था और अपनी आठ प्रतिज्ञाएं होती थीं उनकी प्रतिज्ञा करता था कि वृक्ष के नीचे निवास करना ,भिक्षा मांगकर भिक्षा पात्रों में ही भोजन करना, भिक्षा द्वारा साधारण वस्त्र पहनना, चोरी न करना, किसी जीव की हत्या न करना , मैथुन न करना एवं अलौकिक शक्तियों का दावा न करना।[90] इन प्रतिज्ञाओं के पश्चात श्रवण को भिक्षु के बीच में प्रवेश दिया जाता था उस समय भिक्षु अपने लिए गुरु स्वयं ही बनाता था । और यह शिक्षा केवल आठ वर्ष पर्यंत ही चलती थी तत्पश्चात भिक्षु पूर्ण रूप से भिक्षु एवं योग्य बन जाते थे किंतु उन्हें आजीवन

[89] रामचंद्र राटी, दु:ख मुक्ती की साधना, पृं. सं, ९८
[90] राहुल संकृत्ययायन, विनय पिटक, , पृ.सं., ४०३

अविवाहित ही रहना पड़ता था और संद्य नियमों का पालन करना होता था। यही बौद्ध शिक्षा के रूप में उच्च शिक्षा का प्रारूप माना जाता था[91]।

बौद्ध शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य एवं स्वरूप -

बौद्ध शिक्षा प्रणाली का विकास तथा स्वरूप अत्यधिक प्रचलित था। और आज के समय में भी देखने को मिलता है। पर बौद्ध शिक्षा प्रणाली का स्वरूप सबसे अलग एवं भिन्न होता है।

बौद्ध शिक्षा प्रणाली का उत्थान एवं मानव संस्कृति का संरक्षण -

बौद्ध शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत कहा जाता है कि बौद्ध शिक्षा प्रणाली का आविर्भाव अत्यधिक प्रचलित था जिसमें बौद्ध शिक्षा मठों और विहारों में प्रदान करने की व्यवस्थाएं होती थी। बौद्ध धर्म के साथ-साथ भिन्न-भिन्न धर्मों संस्कृतियों एवं दर्शनों का भी अध्ययन किया जाता था । बौद्ध काल में धर्म संस्कृति प्राच्य विद्याओं तथा नूतन विद्या के लिए अनेकों विद्वानों की व्यवस्था प्राप्त होती थी। जैसे प्राच्य विद्या को नवीन विद्या के अनुरूप हसले कंकर के अलग-अलग भाषाओं के रूप में में अनुवाद किया करते थे किंतु कुछ विद्वान मौखिक रूप से ही विज्ञान दिया करते थे बौद्ध शिक्षा प्रणाली के संदर्भ में अत्यधिक विशाल पुस्तकालय हुआ करते थे ।

बौद्ध शिक्षा प्रणाली में सामाजिक एवं व्यवहारिक शिक्षा प्रबंध -

बौद्ध शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत सामाजिक तथा व्यवहारिक शिक्षा के ही समकक्ष रही है। पर स्वार्थ की भावना अत्यधिक थी ,किंतु गरीबों की सहायता किया करते थे इस समय में सामाजिक व्यवहार में करुण रस का अत्यधिक प्रभाव रहा है क्योंकि करुणा के माध्यम से ही गरीबों की सहायता एवं विचारों को समझा जाता था। इस दृष्टि से बौद्ध शिक्षा प्रणाली सामाजिक तथा व्यवहारिक रूप से सहायता प्रदान करती थी ।[92]

---

[91] स्वामी द्वरिकादास शास्त्री, चुल्लवग्ग, पृ.सं., ३२१

[92] स्वामी द्वरिकादास शास्त्री,च्दीघनिकाय, पृ.सं.,१७

बौद्ध शिक्षा प्रणाली के माध्यम से ज्ञान की प्राप्ति -

बौद्ध शिक्षा प्रणाली के अनुसार इस संसार में सभी दुखों का कारण केवल मात्र अज्ञान ही था। बौद्ध शिक्षा प्रणाली में अज्ञान को नष्ट करने के लिए चार आर्य महासत्यों का ज्ञान प्राप्त किया जिससे अज्ञान अंधकार को पूर्णतया समाप्त कर सके अतः वैदिक काल में वेदों के ज्ञान को सच्चा ज्ञान माना जाता था उसी प्रकार बौद्ध शिक्षा काल में भी ज्ञान को सच्चा ज्ञान माना गया है।[93]

बौद्ध शिक्षा प्रणाली की उच्च शिक्षा व्यवस्था -

बौद्ध शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत उच्च शिक्षा की व्यवस्था मठों एवं विहारों में आठ वर्ष तक होती थी। उच्च शिक्षा के माध्यम से बालक तथा भिक्षुओं को अनेकों प्रकार की शिक्षाओं की व्यवस्थाएं प्राप्त थी। जैसे- व्याकरण छंद ज्योतिष ,धर्म, आयुर्विज्ञान, दर्शनों का सामान्य ज्ञान, वैदिक ज्ञान, पाली, प्राकृत, खगोल, न्याय शास्त्र, अर्थशास्त्र,कला- चित्रकला ,मूर्तिकला ।कौशल- कताई, बनाई और रंगाई आदि व्यवस्था- कृषि व्यवस्था, पशुपालन व्यवस्था,एवं वाणिज्य, भवन निर्माण आदि धर्म - वैदिक धर्म, बौद्ध धर्म ,जैन धर्म इत्यादि समस्त विद्याओं की प्राप्ति होती थी।[94]

बौद्ध शिक्षा में भिक्षु शिक्षा की व्यवस्था -

भिक्षुओं की शिक्षा की व्यवस्था उच्च शिक्षा व्यवस्था के समान ही अधिक प्राप्त होती थी । भिक्षु शिक्षा केवल आठ वर्ष पर्यंत उच्च शिक्षा प्रणाली व्यवस्था में लौकिक के आधार पर शिक्षा की व्यवस्था होती है। पर भिक्षु शिक्षा विशिष्ट रूप की शिक्षा है इसमें आध्यात्मिक मार्ग तथा त्रिपिटक सुवन्त विनय और धर्म शिक्षाएं दी जाती थी । तथा वैदिक धर्म की शिक्षा भी विशेष रूप से अध्ययन कराई जाती थी और साथ ही साथ मठों तथा विहरों की देखरेख एवं संचालन करना आदि शिक्षाओं की व्यवस्थाएं प्राप्त होती थी ।[95]

---

[93] बलदेव उपाध्याय, बौद्ध-दर्शन-मीमांसा, पृ. सं, ५७

[94] स्वामि द्वरिकादास शास्त्री, चुल्लवग्ग, पृ.सं., २२१

[95]आचार्य नरेंद्रदेव, बौद्ध धर्म-दर्शन, पृ.सं., ३४

बौद्ध शिक्षा प्रणाली में शिक्षण विधियां -

बौद्ध शिक्षा प्रणाली में अनेकों प्रकार की शिक्षण विधियों का वर्णन प्राप्त है जिसमें प्रश्नोत्तर विधि, अनुकरण, व्याख्या, वाद -विवाद, व्याख्यान, सम्मेलन प्रदर्शन एवं देशाटन आदि प्रकारों की शिक्षण विधियों की प्राप्ति होती है।

बौद्ध शिक्षा प्रणाली में प्रश्नोत्तर शिक्षण विधि -

प्रश्नोत्तर शिक्षण विधि में बालक पिता से शिष्य गुरु से प्रश्न -उत्तर करता है तदोपरांत बालक अपने प्रश्नों के उत्तर पिता एवं गुरु के माध्यम से यथोचित प्राप्त कर लेने की क्रिया है इसी क्रिया को ही प्रश्नोत्तर शिक्षण विधि कहते हैं।

बौद्ध शिक्षा प्रणाली में अनुकरण शिक्षण विधि-[96]

इस अनुकरण शिक्षण विधि का प्रयोग अधिकतर प्राथमिक शिक्षा रूप में किया जाता था क्योंकि इस विधि में सीखना सिखाना का स्वाभाविक गुण प्राप्त होता है जैसे माता, पिता एवं शिक्षक शब्दों के उच्चारण करते थे तो बालक व छात्र उन्हें मुख्य रूप से उनका अनुकरण करने की प्रकिया ही अनुकरण सिक्षण विधि कहताली थी।[97]

बौद्ध प्रणाली में व्याख्या शिक्षण विधि -

बौद्ध शिक्षा में व्याख्या शिक्षण विधि के अंतर्गत देखा जाता है कि जब बालक अपने मठों एवं विहारों में शिक्षा ग्रहण किया करते थे तो उस समय बालक तथा भिक्षु किसी भी शिक्षा का पाठ करते थे तब गुरु उस शिक्षा को व्याख्यात्मक रूप से समझाता था इसी प्रक्रिया को व्याख्या विधि कहा जाता था।

बौद्ध शिक्षा में वाद-विवाद शिक्षण विधि -

वाद- विवाद शिक्षण विधि को देखा जाता था कि जब अनेकों विद्वानों का शंका समाधान चलता था। तब उसमें शास्त्र, दर्शन एवं धर्मों पर वाद- विवाद की प्रक्रिया हुआ करती थी उसी

[96] भारतीय शिक्षा का इतिहास,मुनेश्वर प्रसाद, पृ.सं., २९
[97] वही, पृ.स,३०

प्रकिया को ही वाद -विवाद शिक्षण विधि कहते थे । जिसमें आठ प्रकार के प्रमाणों के माध्यम से अनेकों विद्वानों के अपने - अपने विचार तथा सिद्धांत प्रकट करना आदि प्रक्रिया ही वाद-विवाद शिक्षण विधि है।

बौद्ध शिक्षा प्रणाली में व्याख्यान विधि -

बौद्ध शिक्षा प्रणाली में व्याख्यान विधि वह होती है जिसमें जो आचार्य तथा विद्वान् जिस विद्या का होता था तो उन्हे उसी विद्या के संबंध में व्याख्यान कराए जाते थे इसी शिक्षण विधि को व्याख्यान विधि कहा जाता था।[98]

बौद्ध शिक्षा प्रणाली में शास्त्रार्थ विधि -

इस शास्त्र विधि में उच्च से उच्च विद्वानों को एकत्र करके धर्म, अर्थ तर्क विषयों पर वार्तालाप करने की प्रक्रियाओं को ही शास्त्रार्थ विधि कहा जाता था।

बौद्ध शिक्षा प्रणाली में अनुशासन प्रणाली -

बौद्ध शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत गुरु व शिष्य मठ तथा विहारों के नियमों को यथोचित अनुकरण करना होता था । जब बालक एवं भिक्षु का पबज्जा संस्कार होता था तब बालक व भिक्षु के लिए कुछ नियम बताए जाते थे उन नियमों का पालन करना अर्थात अनुशासन करना ही अनुशासन प्रणाली होती है। जैसे अहिंसा पालन ,शुद्ध आचरण ,सत्य बोलना, शुद्ध आहार, मादक पदार्थों का सेवन न करना, निंदा न करना इत्यादि[99] तथा भिक्षुओं के लिए अलग से आठ नियमों का पालन करना होता था जैसे वृक्षों के नीचे निवास न करना, सादा वस्त्रों में रहना, भिक्षा मांग कर भोजन करना, ब्रह्मचर्य पालन, चोरी न करना, हिंसा न करना एवं अलौकिक शक्तियों का पालन न करना इत्यादि अनुशासन प्रणाली होती थी।

---

[98] स्वामि द्वरिकादास शास्त्री, दीघनिकाय, पृ.सं., ८०

[99] राहुल संकृत्ययायन, विनय पिटक, पृ.स, ३०३

बौद्ध शिक्षा प्रणाली में शिक्षक (उपझयाय उपाध्याय)-

बौद्ध शिक्षा प्रणाली में मठ एवं विहारों में शिक्षा प्रदान होती थी उसमें बौद्ध भिक्षु ही रहा करते थे जो कि भिक्षु शिक्षा ग्रहण कराया करते थे उन्हें ही उपाध्याय अर्थात उपझयाय कहा जाता था। उपाध्याय अर्थात उपझयाय वही होता था जो आठ वर्ष तक भौतिक शिक्षा को धारण किया हुआ रहता था ।[100] जैसे - धर्मावलंबी होना, अविवाहित रहना, बौद्ध संघों के नियमों का कठोरता से पालन करना , अतिविद्वान , आत्मसंयमी एवं चरित्रवान होता था।

बौद्ध शिक्षा प्रणाली में शिक्षार्थी (श्रवण सामनेर)-

बौद्ध कालीन शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत शिक्षार्थियों को श्रवण अथवा सामनेर कहा जाता था इन्हें मुख्य रूप से विहार एवं मठों में ही कठोरता से नियमों का पालन करते करते रहना पड़ता था अतः इन्हें दस नियमों का मुख्य रूप से पालन करना पड़ता था।

जैसे अहिंसा का पालन, निंदा न करना, सत् हार, सत्य बोलना, मादक पदार्थों का सेवन न करना ,पराई वस्तु को ग्रहण न करना, श्रृंगार की वस्तुओं का प्रयोग न करना,सोना चांदी कीमती वस्तु दान न लेना, शुद्ध आचरण एवं नृत्य एवं संगीत आदि से दूर रहना ही बौद्ध शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत शिक्षार्थी विधि कहलाती थी।[101]

बौद्ध शिक्षा प्रणाली में शिक्षक शिक्षार्थी संबंध-

शिक्षक शिक्षार्थी संबंध में गुरु शिष्य के संबंध पिता पुत्री तुल्य माने जाते थे बौद्ध शिक्षा का केंद्र मठ एवं विहार ओं को ही माना जाता था जिसमें गुरु और शिष्य रहा करते थे गुरु एवं विचारों की व्यवस्था तथा नीतियों बनाता था और शिष्य इन व्यवस्था है तथा नीतियों का अनुकरण करना होता था जैसे गुरु अपने शिष्यों की आवासीय एवं भोजन व्यवस्था करता था स्वास्थ्य की रक्षा करता था बौद्धिक शिक्षा का ज्ञान प्राप्त करता था करणीय कर्मों की अनुमति देतना, अकार्यकर्मों को करने से रोकना इत्यादि गुरु शिष्यों को आचरण की दृष्टि से रखता था

---

[100] स्वामि द्वरिकादास शास्त्री, चुल्लवग्ग, पृ.सं., १२१
[101] भिक्षु धर्मरशित, सुत्तिपात, पृ.सं., २५

तथा चरित्रवान बनाता था। गुरु की आज्ञा का पालन करना गुरु की आज्ञा से भिक्षा मांग कर लाना, गुरु की सेवा करना, तथा गुरु के आचरण देखते रहना तथा उनके भूल करने पर संघ को सूचित करना इत्यादि [102]

बौद्ध शिक्षा प्रणाली में स्त्री शिक्षा -

बौद्ध कालीन शिक्षा परंपरा के प्रारंभ में स्त्री शिक्षा को मठ एवं विहारों में निषेध था। महाबुद्ध ने अपनी विमाता महा प्रजावती को अपने शिष्य आनंद के कहने पर प्रवेश देने की अनुमति प्रदान की थी। वह स्त्रियां भी पुरुषों की भांति मठ एवं विहारों में ही कठोर नियमों के साथ रहने लगी। स्त्रियों के संघों तथा विहारों की व्यवस्थाएं अलग हुआ करती थी। परंतु उनको विहारों की कठोर परिश्रमी दिनचर्या पर चलना अत्यधिक कठिन लगता था तो इसलिए कुछ बालिकाओं का आना का स हो गया था। और उसी के उपरांत कुछ विदुषी महिलाएं हुई थीं जैसे- शीलभट्टारिका, जिजयांका और प्रभुदेवी ,(कवयित्री), रानी नयनिका और रानी दुर्गावती ,(गुप्त राजनीतिज्ञ) सम्राट अशोक की बहन संगमित्र, (धर्म विशेषज्ञ) सम्राट हर्षवर्धन की बहन एवं शास्त्रार्थ में अत्यधिक निपुण थी। बौद्ध शिक्षा के अन्तराल तक स्त्री शिक्षा बहुत कम सी हो गई थी।

व्यवसायिक शिक्षा –

बौद्ध कालीन शिक्षा में कला -कौशल एवं वाणिज्य के क्षेत्रों में अत्यधिक प्राप्ति थी इस समय को भारत के इतिहास में एक नई दिशा की उन्नति मानी गई थी अतः इसी काल में बालकों को अपनी-अपनी रूचि के अनुसार भिन्न - भिन्न कला - कौशलों एवं व्यवस्थाओं की शिक्षाएं प्राप्त की जाया करती थीं।

बौद्ध ग्रंथ महावग्ग में भिक्षुओं को कताई, बुनाई और सिलाई एवं अन्य छात्रों को पशुपालन तथा व्यापार की शिक्षाएँ दी जाती थीं ।

---

[102] भदंत आनंद कौसल्यायन, अंगुत्त्तिकाय, पृ.सं., १६०

बौद्ध ग्रंथों के मलिन्दपान्ह में १८ सिप्पो (शिल्पों) की शिक्षाओं की व्यवस्थाओं का उल्लेख प्राप्त होता है । उस समय में अलग-अलग मत एवं विहारों में अलग-अलग शिल्पकलाओं की शिक्षाएं प्राप्त ग्रहण कराई जाती थी तथा उस समय आयुविज्ञान शिक्षा की भी अत्यधिक प्राप्ति थी । इस बौद्ध काल में ही वैद्यराज धनवंतरी और चरक एवं शल्य चिकित्सक जीवक और सुश्रुत भी अत्यधिक प्रचलित हो गए थे । चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में तक्षशिला विश्वविद्यालय को मुख्य आधार माना जाता था।[103]

बौद्ध शिक्षण केन्द्र-

शिक्षण राज्य द्वारा दिया जाए या शिक्षण राज्य का यह कर्तव्य विहित कर्म है यह एकदम आधुनिक विचार है। यूरोप में प्राचीन काल में यह काम ईसाई गिरजे करते थे। भारत ने यह कार्य विविध धर्म पंथ और संस्थाओं का था। कि वे अपनी शिक्षा प्रणाली बनाएं और चलाएं । यह कहा जाता है कि ब्राह्मणीय प्रणाली सबसे पुरानी है। यह शिक्षण परंपरा वैदिक काल से चली आ रही है इसमें एक गुरु और उनके थोड़े शिष्यों का दल मुख्य था इसे गुरु गृह कहते थे। बौद्ध प्रणाली परंपरा विहारों की है उसकी पूर्ति भिक्षु जीवन से संबंध है। आधुनिक विचारक इसमें दो प्रकार की विकास रेखाएं निकालते हैं प्रो. मुखर्जी लिखते हैं कि ब्राह्मण प्रणाली में गृहस्थ के वातावरण की आवश्यकता होने से गुरु गृह विस्तृत बनकर बड़े विश्वविद्यालयों का रूप न ले सके। इसलिए बौद्ध प्रणाली में बड़े-बड़े विहार विश्वविद्यालय निर्मित हो सके जिससे हजारों अध्यापक और विद्यार्थी एक साथ रह सकते थे। बौद्ध धर्म की अभिन्न तीन चार सदियों में से यह विश्वविद्यालय सारे एशिया में विख्यात हो गए और इस महाद्वीप के विभिन्न भाग से विद्यार्थी आकर्षित होकर उन में आने लगे। बाद में विश्वविद्यालय जैसे नालंदा, वल्लवी,विक्रमशिला, जगद्दल और उदंतपुरी डेढ़ हजार वर्षों तक जो विकास होता जा रहा था उसकी अंतिम अवस्था व्यक्त करते हैं।

---

[103] भिक्षु जगदीश कश्यप. मिलिंदपहो, पृ.सं., २४

बौद्ध शिक्षण का इतिहास बौद्ध मठ विहार और भिक्षु संघों के इतिहास का ही एक पक्ष है । इसमें इन विहारों के भीतर के बौद्धिक जीवन की प्रक्रिया व्यक्त होती है। इस जीवन की क्रमशः प्रगति पर समृद्धि की और नए मानसिक क्षितिज प्राप्त होते गए। अन्यथा विहार एक ऐसी जगह बन गए जो केवल मठबद्ध और धर्म चिंतन के स्थान ही नहीं अपितु संस्कृति और ज्ञान की पीठबन गए और उसमें से कुछ विश्वविद्यालय हो गए।

बौद्ध शिक्षण का उद्भव

उद्भव शिक्षण संस्थानों का इतिहास -

प्राचीन भारतीय इतिहास से पता चलता है कि विभिन्न युग में विभिन्न संख्याएं थी। सभ्यता के प्राचीनतम काल में साहित्य और व्यावसायिक शिक्षा परिवार में ही शिक्षा दी जाती थी। जब शिक्षा का विकास होने लगा था तब विशेष अध्ययन की ओर लोगों की रूचि बढ़ने लगी तो विद्वानों ने अपनी पाठशाला प्रारंभ की इसके पश्चात संगठित शिक्षण संस्थानों का जन्म हुआ विहार और मंदिर क्रमश: विश्वविद्यालय और मठों में परिणत हो हो गए।

स्वतन्त्र अध्यापक-

जब शिक्षा का उत्थान होने लगा और लोगों में रुचि विशेष अध्ययन की ओर बढ़ने लगी तो गुरुओं ने तीर्थों और प्रसिद्ध नगरों में अपनी स्वतंत्र पाठशालाऐं प्रारंभ कर दी। प्राचीन समय में तक्षशिला और बनारस में ऐसी अनेक स्वतंत्र संस्था थी। प्रत्येक विद्वान स्वयं स्वतंत्र संस्था के रूप में होता था। यदि विद्यार्थियों की संख्या अधिक बढ़ जाती तो गुरु किसी योग्य ज्येष्ठ शिक्षक को ही अपने सहायक अध्यापक के लिए नियुक्त कर देता था।

संगठित शिक्षण संस्थानों का जन्म संगठित शिक्षण संस्थानों को जन्म पहले बुद विहार में हुआ इन महाविहारों में भिक्षु और भिक्षुणियां रहती थी। किंतु कालांतर में यह विद्या केंद्र होकर विश्वविद्यालय में बदल गए। उसके प्रभाव से भिक्षुओं के मंदिर भी विद्यालय में परिणत हो गए। विभिन्न संप्रदायों के आचार्यों मठों में भी अध्ययन अध्यापन करते थे।

बौद्ध विश्वविद्यालयों का प्रबंध-

नालंदा और विक्रमशिला महाविहारों को हम बौद्ध विद्यालयों का प्रतिनिधि मान सकते हैं। संपूर्ण विश्वविद्यालय का अध्ययन कोई स्थाई विद्वान व भिक्षु होता है। संघ के सदस्य प्राय: उसका चुनाव करते थे। चुनाव में भिक्षु के चरित्र पांडित्य और उम्र का ध्यान रखा जाता था। प्रधानाचार्य के सहायक दो समितियां होती थी। प्रवेश शिक्षा समिति तथा दूसरी प्रबंध समिति। महाविहारों में विद्यार्थियों के प्रवेश, पाठ्यक्रम निर्धारण तथा अध्यापकों में पाठ्य विषयों के विभाजन कार्य शिक्षा समिति करती थी एवं पुस्तकालयों का प्रबंध भी करती थी । प्रबंध समिति का कार्य सामान्य व्यवस्था की देखभाल करना आय ,व्यय का संचालन करना होता था। नए भवनों का निर्माण तथा पुराने भवनों की मरम्मत भिक्षुओं के लिए आवास,भोजन, वस्त्र, चिकित्सा की व्यवस्था तथा विहारों के अन्य कार्यों का संचालन इसी समिति के कार्य में होते थे।

प्रवेश की प्रक्रिया विधि-

प्रत्येक विद्यार्थी की प्रवेश के आधार पर उनकी योग्यता की जांच के लिए कड़ी परीक्षा ली जाती थी। इस अवसर पर उनकी चरित्र और बुद्धि दोनों की जांच होती थी। चरित्रहीन विद्यार्थी का प्रवेश पूर्णत: वर्जित था। नालंदा महाविहार जैसे प्रसिद्ध विद्या पीठ में प्रवेश के लिए अत्यधिक एकत्रित होते थे । वहां की प्रवेशिका परीक्षा बड़ी दुरुह थी। १० प्रवेश विद्यार्थियों में दो या तीन को ही प्रवेश पाने में सफलता मिल पाती थी। नालंदा महाविहार और विक्रमशिला

महाविहार के विश्वविद्यालयों में प्रवेश विद्यार्थियों की बुद्धि चरित्र और योग्यता की जांच के लिए १० आचार्य नियुक्त किए जाते थे।

मुख्य शिक्षण केन्द्र -

सुदीर्घ काल तक अध्यापक व्यक्तिगत रूप से अध्ययन का कार्य करते रहे । इस प्रकार की पाठशाला उस समय समस्त भारत में पाई जाती थी किंतु राजाओं की राजधानियों तथा तीर्थ स्थानों में इनकी संख्या बहुत थी। राजा और सामंत विद्या को प्रोत्साहन देते थे। जिससे कि विद्वान् उनकी राजधानियों की और आकर्षित होते थे। जैसे- मुख्य विश्वविद्यालय का सामान्य परिचय-

- **नालंदा**
- **विक्रमशिला**
- **तक्षशिला**
- **वल्लवी**
- **जगद्दल**
- **उदंतपुरी**
- **सोमपुरी**

नालंदा विश्वविद्यालय का आदिकालीन इतिहास-

नालंदा पटना से दक्षिण की ओर लगभग ५० मील की दूरी पर है। अत्यंत प्राचीन काल से यह बौद्ध धर्म का केंद्र था, क्योंकि बुद्ध के मुख्य शिष्य सारिपुत्र का जन्म यही कहा था। अशोक ने भी यहां एक मंदिर बनवाया था। किंतु विद्या के केंद्र रूप में इसका इतिहास लगभग ४५० ई. से प्रारंभ होता था। ४१० ई. में फाहियान ने नालंदा की यात्रा की थी।[104] किंतु उसने

[104] भारतीय शिक्षा का इतिहास,मुनेश्वर प्रसाद, पृ.स, २०८

इस रूप में इसका वर्णन नहीं किया। अनेक गुप्त राजाओं के प्रोत्साहन से अल्पकाल में ही नालंदा के महत्व में तेजी से वृद्धि हो गई। इस काल में भारत ने कितनी धार्मिक सहिष्णुता थी। इसका प्रमाण इसी में मिल जायेगा कि नालंदा में सबसे बड़े बुद्ध विद्यापीठ के विकास साधन, सामग्री, संकलन आदि के लिए सर्वाधिक दान गुप्त राजाओं ने दिए थे। शक्रादित्य संभवत: प्रमेय कुमार गुप्त (४१४ से ४४५) ई.ने एक विहार के निर्माण तथा दान से नालंदा की महत्ता को स्थापित किया।[105]

इस विहार का विशाल मंदिर ही सुदीर्घ काल तक नालंदा संघ का मुख्य उपासना गृह था। नरसिंहगुप्त, बालादित्य ४६८ से ४७२ ई.तथा बुद्ध गुप्त ४७५ से ५०० ने भी यहां ११ विहार बनवाए थे बालादित्य का उत्तराधिकारी बज्र था। किंतु उसकी पहचान अभी नहीं हो सकी थी। वज्र तथा मध्य भारत के एक अन्य अज्ञात राजा ने भी दो विहारों का निर्माण करवाया था। ११ वीं शताब्दी तक हिंदू तथा बौद्ध राजाओं ने विहार निर्माणों की यह परंपरा अविच्छिन्न रखी हुई थी।

नालंदा विश्वविद्यालय के उत्पन्न होने से ज्ञात होता है कि एक मील लंबा और आधा मिल चौड़ा था। पूर्व निश्चित योजना अनुसार ही विहार और तक से संबंध रूपों का निर्माण हुआ था। इनका निर्माण एक पंक्ति में निश्चित दूरी पर हुआ था मुख्य विद्यालय से संबंधित साथ विशाल व्याख्यान मंदिर तथा अध्यापन के लिए ३०० छोटे छोटे कमरे थे। सभी भवन अतिकांतिमान और कई मंजिल ऊंचे भी थे।

"Hui Li" लिखता है विहारों के शिखर गगनचुम्बी होने के कारण बरसात में वहीं चढ़कर नीचे बादल कैसे आकार बरसतते हैं। प्रेक्षक दे देख सकता था।[106] उक्तयामी का यह वर्णन अति रमणीय हो सकता है किंतु एक तत्कालीन लेख से इसका अप्रत्यक्ष समर्थन हो जाता है।

---

105 वही. पृ.स. २०९

106 पी.वी बापट, बौद्ध धर्म के २५०० वर्ष, पृ. सं. ११७

अतः हम भली प्रकार से यह कह सकते हैं कि इन विद्यालयों मंदिरों में विहारों की शिखर पर खड़े ही उतुंग थे। नालंदा में निर्मल जल तथा नील कमलों से परिपूर्ण जलाशय थे। जो सौंदर्य और भी द्विगुणित कर रहे थे। इनसे विहारों को तथा पुष्प के माध्यम से प्रकाशमान होते थे।

विद्यार्थियों की संख्या-

जिस समय इत्सिंह ६७५ ई. नालंदा में निवास करता था। वहां ३००० विद्यार्थी थे युयान च्वांग की जीवनी को लेखक लिखता है कि सातवीं शताब्दी के मध्यकालीन नालंदा में विद्यार्थियों की संख्या १०,००० हुआ करती थी। नालंदा में कई हजार विद्यार्थी थे किंतु इतना तो निश्चित है कि सातवीं शताब्दी के मध्य में कम से कम ५००० विद्यार्थी विद्या रत्न हुआ करते थे।[107] नालंदा महाविहार छठी शताब्दी से लेकर १२वीं शताब्दी तक महायान संप्रदाय के मूल शिक्षा केंद्र के रूप में रहा है। यहां पर देश-विदेश से विद्यार्थी पढ़ने आया करते थे। यहां विभिन्न विषयों की शिक्षाएं दी जाती थी यहां कुल ८५०० विद्यार्थी और १५१० शिक्षक रहते थे। (हेरिटेज ऑफ नालंदा)

विहार से विश्वविद्यालय-

नालंदा केवल विहार मात्र ना था इसकी कीर्ति मुख्यत: विद्या के केंद्र के रूप में ही थी। जो युयान च्वांग लिखते हैं कि विहार में कई हजार भिक्षु रहते थे यह सभी उत्कृष्टविद्वान और प्रकांड पंडित हुआ करते थे। इनमें कुछ ऐसे हैं जिनका यस युगयुगांतरों में व्याप्त है। भिक्षुगण विनय के नियमों का कड़ाई से पालन करते थे। ज्ञानार्जन और शास्त्रार्थ में वे तत्कालीन रहते थे। परस्पर के दोषों को बदला देते हैं ज्येष्ठ और कनिष्ठ भिक्षु समीपस्थ एक दूसरे की सहायता करते थे। इसलिए विदेशों से भी विद्यार्थी अपनी शंकाओं के समाधान के निमित्त यहां आते थे। वे नालंदा में पढ़कर अपने देशों में शिक्षा का प्रचार प्रसार करते थे।

---

[107]पी.वी बापट, बौद्ध धर्म के २५०० वर्ष, पृ.स.१२५

भोजन तथा आवास की व्यवस्था-

भिक्षु विद्यार्थियों के आवास के लिए ही इन बिहार ओं का निर्माण हुआ था और यही रहते थे अब तक ऐसे तेरा बिहार खुदाई से निकाले जा चुके हैं किंतु मानचित्र के अवलोकन से विदित होता है कि विहारों की संख्या इससे भी अधिक थी बिहार कम से कम २ मंजिल अवश्य थे इनमें कुछ कमरे ऐसे थे जिनमें एक विद्यार्थी रह सकते थे और कुछ ऐसे थे जिनमें २ विद्यार्थी रह सकते थे। प्रत्येक विद्यार्थी के लिए पत्थर की एक चौकी दीपक और पुस्तक रखने के लिए आला बना था उत्खनन में प्रत्येक विहार के प्रांगण में एक कोने पर कुआं मिलता है इससे प्रकट होता है कि जल व्यवस्था की उपेक्षा नहीं की गई थी प्रवेश क्रम के अनुसार भिक्षुओं को कमरे दिए जाते थे। विश्वविद्यालय को दान में २०० गांव मिले थे अतः यहां के विद्यार्थियों के भोजन एवं आवास की व्यवस्था नि:शुल्क करना होता था। बौद्ध विहारों में नियम था की सामान्य विद्यार्थियों को नि:शुल्क भोजन तथा आवास की प्रबंध तभी किया जाता था जब विहार में अपना कुछ श्रमदान करें

पवित्रता और पांडित्य का अद्भुत संगम-

नालंदा के कुलपति अपने पांडित्य के लिए इतने विख्यात ये उतने ही अपने निर्मल चरित्र वा अध्यात्मिक ज्ञान के लिए प्रसिद्ध थे। धर्मपाल और चंद्रपाल जिन्होंने तथागत की शिक्षाओं को सुभाषित कर दिया था। गुणवती और श्रीमती जिनका पांडित्य और कीर्ति सर्वत्र प्रस्तुत हुई थी। प्रिय मित्रजनों ने विवादों में अपने जिनमित्रो का सभा में बर्चस उच्चतर का था। जिनी चंद्र जिनका आचरण आधारभूत तथा बुद्धि प्रखर थी। शीलभद्र जिनकी सर्वगुण संपन्नता वह स्वतंत्र प्रज्ञा विनय के कारण प्रकट नहीं होती थी।

यह सर्वगुण आदर्श चरणी विद्वतरत्न नालंदा की कीर्ति चढ़ा रहे थे। यह विद्वान अध्ययन अध्यापन से ही संतुष्ट न थे अपितु इन्होंने अनेक बहुमूल्य ग्रंथों की रचना की थी। जिनका अनेक उनके समय में ही बहुत प्रचार तथा मान हो गया था। यह उपर्युक्त विद्वान ईसा की

सातवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में हुए थे। अपने ७०० वर्षों के इतिहास में नालंदा ने कितने ऐसे विद्वान उत्पन्न किए होंगे उनकी संख्या अवश्य बड़ी होगी। युयान च्वांग के समय में इस विद्यापीठ में पांडित्य का सामान्य स्तर बहुत ऊंचा था। ५००० या १०००० शिक्षकों में हजार भिक्षु ऐसे थे जो ३० सूत्र निकायों की व्याख्या कर सकते थे। तथा संभवत:१० ऐसे थे जो ५० सूत्र निकायों की व्याख्या कर सकते थे।

पुस्तकालय की सुविधा-

नालंदा के अधिकारियों ने अनुभव कर लिया था कि पुस्तकालय के विना विहार वैसे ही है जैसे शस्त्रागार के बिना दुर्ग। विभिन्न विद्वानों के अन्वेषण में रतशतश: अध्याप को तथा सहस्त्रों विद्यार्थियों के लिए लाभार्थ नालंदा विहार में एक विशाल पुस्तकालय था।

चीनी विद्वानों के नालंदा में महीनों तक टिके रहने का एक कारण यह भी था कि यहां वह आगामी तथा अन्य पुस्तकों की सूक्ष्म प्रतिलिपियां प्राप्त कर सकते थे। इत्सिंग ने नालंदा में ४०० संस्कृत पुस्तकों की प्रतिलिपि तैयार की थी। जिसमें कम से कम ५००००० पांच लाख श्लोक रहे होंगे। पुस्तकालय के मुहल्ला का नाम धर्मगंज जो अति महत्वपूर्ण है। तीन विशाल भवनों में जिन्हें रत्नसागर रत्नदधि एवं रत्न रंजक कहते थे। यह नाम सार्थक थे जिनमे पुस्तकें रखी हुई होती थीं।

व्याख्यान की व्यवस्था केन्द्रों में विद्यार्थियों की संख्या-

नालंदा के ५००० संभवत: १०००० भिक्षुओं में १०० भिक्षु कम से कम ३० निकायों की व्याख्या कर सकते थे। उसका अर्थ यह हुआ कि यहां कम से कम १००० अध्यापक थे जो ४००० व्यक्तियों क पढ़ाते थे। किंतु यह संख्या ९००० से अधिक कदाचित नही ही थी। इस प्रकार सामान्यतया एक अध्यापक को ९ विद्यार्थियों से अधिक को नही पढ़ाना पड़ता था। ऐसी अवस्था में प्रत्येक विद्यार्थी की प्रगति पर प्रत्यक्ष रूप से ध्यान रखना संभव था । इसलिए यहां

अध्यापन अति कार्य साधक रहा होगा । विद्यापीठ में लगभग १०० व्याख्यानों का प्रबंध किया जाता था । विद्वान भिक्षु अध्यापन का बड़ा आदर था। इन्हें पालकी में आसन दिया जाता था। अध्यापन और व्याख्यान कला के वे विशारद थे। इत्सिंग ने लिखा है कि मुझे इस बात की प्रशंसा होती है कि मुझे व्यक्तिगत रूप से ज्ञान का प्राप्त करने का अवसर मिला था।जो अन्यत्र में कभी प्राप्त न कर सकता था।

पाठ्यक्रम-

नालंदा विश्वविद्यालय का पाठ्यक्रम बहुत ही विस्तृत था और वहां सभी प्रकार के दर्शन पढ़ाए जाते थे। यह विहार महायान बौद्धों का था। भिक्षु प्रतिदिन हीनयान की पुस्तकें भी यहां पढ़ाई जाती थी। अतः पाली का अध्ययन अनिवार्य था क्योंकि अधिकांश हीनयान ग्रंथ पाली में ही प्राप्त थे। यहां नागार्जुन, वसुबंधु, असंग और धर्मकीर्ति आदि महायान आचार्यों के ग्रंथों का विशेष रूप में अध्ययन अध्यापन अवश्य होता रहा होगा। किंतु हमें यह नहीं समझ न चाहिए कि यहां का पाठ्यक्रम इस अर्थ में संप्रदायिक था कि यहां हिंदू विषयों के पढ़ाई की व्यवस्था न थी। सर्वप्रथम हमें यह ज्ञान लेना चाहिए कि व्याकरण, न्याय और साहित्य, वैदिक और बौद्ध सबके अध्ययन के विषय मैं तथा इस काल में बौद्ध और वैदिक धर्म एवं दर्शन इतने परस्पर संबंध हो चुके थे कि विवाद अनुरागी विद्वानों के लिए ही नहीं अपितु सत्य अन्वेषी के लिए भी एक के बिना दूसरे का अध्ययन असंभव था। स्वयं बुद्ध ने लिखा है कि नालंदा में अन्य फुटकल विषयों के अतिरिक्त तीनों वेदों, वेदाध्यन और सांख्य दर्शन का भी अध्ययन होता था। फुटकल विषयों का तात्पर्य संभवत: धर्म शास्त्र, पुराण, ज्योतिष आदि से था। चिकित्सा शास्त्र जिसका उल्लेख आगामों में हुआ और पढ़ाया भी जाता था। प्रबन्ध संपूर्ण प्रबंध का प्रधान नियामक भिक्षु महारथी वीर होते थे। जिनकी सहायतार्थ दो प्रवृत्ति रहती थी। प्रमेय शिक्षा संबंधी कार्यों के लिए और द्वितीय सामान्य विषय प्रबंध के लिए।

उत्तरकालीन इतिहास एक विदेशी राजा का -

१२ वीं शताब्दी तक विद्या के महत्वपूर्ण केंद्र के रूप में नालंदा की ख्याति थी ।आठवीं शताब्दी के एक लेख से ज्ञात होता है कि शास्त्र परंपरागत प्रकांड पंडितों के कारण नालंदा तत्कालीन सभी नगरीयों का उपहास करती थी। ईशा की नौवीं शताब्दी में भी राष्ट्रीय जगत में इसकी ख्याति थ जावा और सुमात्रा के राजा बलपुत्रदेव ने इसकी कीर्ति से आकृष्ट होकर यहां एक विहार निर्मित कराया था। तथा उसके वार्षिक खर्च के लिए अपने मित्र बंगाल के राजा देवपाल को ५ गांव दान करने के लिए प्रेरित किया गया था। इस निधि के एक भाग से पुस्तकों की प्रति लिपि कराई जाती थी।

तिब्बत में धर्मप्रचार कार्य-

ईशा की आठवीं शताब्दी में तिब्बत में बौद्ध धर्म और संस्कृति के प्रचार पसार के लिए नालंदा के विद्वान सक्रिय थे। अतः नालंदा में तिब्बत भाषा के अध्यापन की व्यवस्था अवश्य की गई होगी। नालंदा के भिक्षु चर्म- गो -मिन आठवीं शताब्दी के प्रारंभ में हुए थे। इस कार्य के अग्रदूत थे इतने दर्जनों ग्रंथों का अनुवाद तिब्बती में हुआ था। अनुवाद के कार्य में बहुत से विद्वान जुट गए थे।तिब्बत के राजा खी- स्त्रो- डेन -व्सान ने ७४९ ईसवी में नालंदा के भिक्षु क्षाकराक्षित नामक एक विद्वान को बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ आमंत्रित किया था। तिब्बत में उनका शाही स्वागत हुआ था।तथा उनकी देखरेख में प्रमेय बुद्ध विहार का निर्माण हुआ था। इस विहार के वे महारत वीर थे। इन्होंने ७६२ ई मैं अपने मृत्यु के समय तिब्बत में बौद्ध धर्म प्रचार के लिए अत्यधिक परिश्रम किया था। पद्मसंभव नामक एक कश्मीरी पंडित ने जिस की शिक्षा दीक्षा भी नालंदा में ही हुई थी इस कारण से दूत की बड़ी सहायता की थी।

विहार का संहार-

१२०० शताब्दी के अंत में मुस्लिम आक्रमण से जिसका नेतृत्व बख्तियार खिलजी ने किया था नालंदा महियामेट हो गई थी। जला दिया गए या धरा शाही कर दिए गए थे तब तत्रस्थ भिक्षुओं को जल तलवार के घाट उतार दिया गया। विहार का अमूल्य पुस्तकालय फूंक दिया गया इस प्रकार आततायी, उन्मादी आक्रमणों ने इस विद्याप्राप्ति को नष्ट भ्रष्ट कर दिया गया था।

तक्षशिला विश्वविद्यालय -

तक्षशिला विश्वविद्यालय इस समय पाकिस्तान के रावलपिंडी शहर से लगभग ३५ किलोमीटर की दूरी पर स्थापित है । इसे वैदिक काल में वैदिक शिक्षा का मुख्य केंद्र एवं बिंदु के रूप में माना जाता था। तथा बौद्ध काल में बौद्ध शिक्षा का मुख्य केंद्र के रूप में जाना जाता था।[108] इस विश्वविद्यालय को वैदिक शिक्षा काल में गुरुकुल कहा जाता था तत्पश्चात बौद्ध काल में इसे विहारों के रूप में जाना जाता था। बौद्ध काल में केवल एक ही विहार उपलब्ध था किंतु शनैः-शनैः अनेकों विहारों की बढ़ोतरी प्राप्त हो गई थी । उनमें जैसे बड़े -बड़े शिक्षण,सभाभवन एवं विशाल पुस्तकालय का निर्माण हुआ था।[109] शिक्षक एवं शिक्षार्थियों के लिए भी बहुत बड़े -बड़े भवनों का निर्माण हुआ था. आवास, भोजन आदि की व्यवस्था भी साथ में प्राप्त थी। इस विश्वविद्यालय में उच्च श्रेणी की शिक्षा दी जाती थी कि जिससे विद्यार्थी एवं भिक्षुओं का भविष्य उज्जवल हो सके। विश्वविद्यालय के कुलपति के रूप में भिक्षु हुआ करते थे।

जिसके माध्यम से ही विश्वविद्यालय में भिन्न -भिन्न कार्यों को किया जाता था। वैदिक काल में इस इस गुरुकुल में केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों को ही शिक्षा दी जाती थी पर बौद्ध काल में हर वर्ग एवं जाति विशेष के बच्चों को प्रवेश दिया जाने लगा था। जिस में प्रवेशार्थी की आयु लगभग १६ वर्ष तक ही मान्य होती थी प्रवेशार्थी को प्रवेश परीक्षा में उत्तीर्ण होने के

[108] रामचंद्र राटी, दु:ख मुक्ती की साधना, पृ.स,१९७
[109] रामचंद्र राटी, दु:ख मुक्ती की साधना, पृ.स, १९८

पश्चात ही प्रवेश दिया जाता था तत्पश्चात ही प्रवेश काल के समय ही छात्रों को शुल्क के साथ १-१ हजार मुद्राएं सुविधानुसार देनी पड़ती थी।और जो छात्र १-१ हजार मुद्राएं देने में असमर्थ हुआ करते थे। वे भी सेवाकार्य कार्यों को देते-देते शिक्षा प्राप्त करते थे।[110]

वल्लवी का इतिहास-

काठियावाड़ के पूर्व किनारे पर वला नामक स्थान के पास स्थित थी। यह एक महत्वपूर्ण राज्य की यह राजधानी तथा बंदरगाह थी। जहां से भारी संख्या में अंतरष्ट्रीय व्यापार होता था। यहां दुर्लभ और बहुमूल्य वस्तुओं के अनेक आगार थे। किंतु सातवीं शताब्दी में व्यापार से अधिक में यह विज्ञान केंद्र के रूप में प्रसिद्ध थी। इत्सिंग लिखते हैं कि अत्तर भारत में नालंदा ही वल्लवी की समता कर सकती थी। खेद है कि चीनी यात्रियों ने यहां की शिक्षा संबंधित क्रियाकलापों का कोई सविनियर विवरण नहीं लिखा है। ६४० ईसवी यहां लगभग सौ विहार थे। जिसमें ६००० भिक्षु रहते थे। सातवीं शताब्दी के मध्य में स्थिर मति और गुणवती प्रसिद्ध विद्वान उसी विश्वविद्यालय में थे। नालंदा की भांति वल्लवी बौद्ध शिक्षा का ही केंद्र नहीं अपितु गंगा की घाटी से भी ब्राह्मण अपने पुत्रों को शिक्षार्थ के लिए भेजते थे।

वल्लवी के स्नातकों तत्कालीन शासन में ऊंचे पदों पर नियुक्त किया जाता था। (इत्सिंग पृ क्रमांक १७७) व्याकरण ,व्यवहार शास्त्र, साहित्य आदि विषयों की शिक्षा यहां होती थी। यह विश्वविद्यालय अपनी धार्मिक उदारता तथा बौद्धिक स्वतंत्रता के निमित्त प्रसिद्ध था। ज्ञात हुआ है कि भारत के सभी कौनो एवं सभी दिशाओं से प्रसिद्ध और प्रवीण मनुष्य पल्लवी में एकत्र होते थे। तथा दो-तीन वर्ष रहते और सभी संभव और असंभव सिद्धांतों पर वाद -विवाद करते थे जब वे अपने मतों में और विशिष्ट सिद्धांतों में पांडित्य हो जाते थे तब भी दूर-दूर तक प्रचार-प्रसार हेतु जाते थे। विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध विद्वानों का नाम नालंदा के भांति मुख्य द्वारों की शिखर पर लिखा जाता था। आर्थिक सहायता ।दी बड़ी समृद्धि पूरी थी इसके १०० करोड़पति

[110] पी.वी बापट, बौद्ध धर्म के २५०० वर्ष, पृ.सं., १२०

नागरिक थे इन श्रेणियों से विश्वविद्यालय को पर्याप्त आर्थिक दान मिलता था नेत्र मैत्रक वंश के राजाओं ने यहां ४८० से ७७५ ईसवी तक शासन किया ।

ओदन्तपुरी महाविहार, विश्वविद्यालय-

ओदन्तपुरी विश्वविद्यालय के विषय में किंचित ही ज्ञान मिलता है । पालवंश के शासन काल में स्थापित विशाल विश्वविद्यालय में बहुत बड़ा पुस्तकालय का भी निर्माण हुआ था। जिसमें वैदिक तथा बौद्ध धर्म शिक्षा की पुस्तकें एवं ग्रंथ प्राप्त थे। इस विश्वविद्यालय की ख्याति नालंदा तथा तक्षशिला जैसी नहीं थी। किंतु फिर भी एक हजार छात्र निवास एवं पठन-पाठन करते थे। और विदेशी छात्र भी इस विश्वविद्यालय में विद्याध्ययन कर रहे थे जिसमें चीनी, तिब्बती तथा वर्मा जैसे अनेकों देशों से छात्र उपस्थित थे । इस विश्वविद्यालय के आधार पर ही तिब्बत में सर्वप्रथम भिक्षुओं के लिए विहार बनाया गया सन् ७४९ ई.पू. में । बौद्ध धर्म शिक्षा का प्रचार- प्रसार करने के लिए इस विश्वविद्यालय का भी अत्यधिक योगदान रहा था। यह ओदंतपुरी विश्वविद्यालय बिहार राज्य के मगध में नालंदा विश्वविद्यालय से १० किलोमीटर की दूरी पर प्राप्त होता था। यह विश्वविद्यालय प्राचीन काल का ऐतिहासिक स्थान माना जाता था । अतः इसके पर्यायवाची शब्द प्राप्त हैं जैसे उदंतपुर एवं उद्दंड।

प्राचीन काल में भारत में शिक्षण कार्य धार्मिक संप्रदायों और संस्थाओं द्वारा संपादित होता था। इस क्रम में वे संस्थाएं अपनी शिक्षण पद्धतियां विकसित करती थी और उसे उपयोग में लाते थे। बौद्ध प्रणाली में बौद्ध विहारों की परंपरा थी। जहां वैदिक प्रणाली में गृहस्थ के वातावरण की आवश्यकता होने से गुरु गृह विस्तृत बनकर बड़े - बड़े विश्वविद्यालयों का रूप नहीं ले सके। वही बौद्ध शिक्षण प्रणाली में शिक्षण कई शिक्षकों के स्वामित्व की संस्था बन गई। इसी कारण बौद्ध प्रणाली में बड़े-बड़े विहार या विश्वविद्यालय निर्मित हो सके। जिसमें हजारों अध्यापक एवं विद्यार्थी एक साथ रहकर अध्ययन -अध्यापन कर सकते थे। बौद्ध धर्म की अंतिम सदियों में इस प्रकार निर्मित विश्वविद्यालय सारे एशिया में विख्यात हो गए और इस महाद्वीप के विभिन्न भागों से विद्यार्थी आकर्षित होकर इस में आने लगे।

इसी काल मगध में नालंदा, वज्रासन (बोधगया) ओदंतपुरी जैसे- महाविहार अस्तित्व में आए। इन महाविहारों का इतिहास समय सदियों में बिखरे हुए और कभी-कभी मिलने वाले कुछ प्राचीन बौद्ध धर्म ग्रंथों से और फिर कई शताब्दियों की खाई पार करके चीनी और तिब्बत जैसे विदेशी स्रोतों से मिलता है।

प्राचीन बिहार प्रारंभ से ही शैक्षणिक गतिविधियों का केंद्र रहा है भगवान बुद्ध और उनके बाद के सालों में वैशाली, राजगृह, और बोधगया ,दार्शनिक और शैक्षणिक गतिविधियों के प्रमुख केंद्र रहे हैं। पूर्व मध्यकालीन विहार ६०० ई . से १२ ईसवी के कई शिक्षण केंद्रों में से चार मुख्य महाविहार विश्वविद्यालय थे। जो अन्य से ज्यादा महत्वपूर्ण थे तत्कालीन विहार के उत्तर में ओदंतपुरी,दक्षिण में वज्रासन (बोधगया), पश्चिम में नालंदा और पूर्व में विक्रमशिला महाविहार विद्यमान थे।

ओदंतपुरी का इतिहास-

ओदंतपुरी का इतिहास तो केवल तिब्बती लेखों से कुछ सीमित हद तक प्राप्त हो पाता है। अतः बुद्ध विहार या शिक्षण संस्थान का पूरा इतिहास प्राप्त कर सकना अत्यंत कठिन है किंतु कुछ छोटी मोटी विकास रेखाएं मात्र दी जा सकती हैं। तिब्बती पौराणिक कक्षाओं में हमें ओदन्तपुरी महाविहार का विस्तृत वर्णन पाने में सफलता प्राप्त हुई है लेकिन वे बौद्ध शिक्षा के लिए प्रसिद्ध इस स्थान का उल्लेख प्रसंग वश करते हैं। जो पाल वंश के समय प्रसिद्ध और लोकप्रिय बना यहां उल्लेखनीय है कि ओदंतपुरी महाविहार का वर्णन प्राया तिब्बती स्तोत्रों में उपलब्ध है। जो यद्यपि कुछ वाद के होते हुए भी बहुत महत्वपूर्ण है इन मूल स्तोत्र में सुम्पा, तारानाथ, वुस्लोन जैसे तिब्बती विद्वानों के आलेख हैं जबकि महापंडित राहुल सांकृत्यायन जैसे भारतीय विद्वान ने भी इस महाविहार पर प्रकाश डाला है। बाद में मिन्हाच ने अपने ग्रंथ तबकात -ए - नासिरी में भी इस महाविहार का उल्लेख किया गया है।

ओदंतपुरी का नाम-

प्राचीन स्थानों के नामों की पहचान एक कठिन समस्या है। भारत जहां काफी मात्रा में पुरातात्विक अवशेष मौजूद हैं। स्थानों के संस्कृत और प्राकृत नाम है जिनके उच्चारण करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। आधुनिक विहार १४ वीं सदी तक उद्दंडपुरी अथवा उदंतपुरी और उदंडप्रदेश के नाम से जाना जाता था। प्रारंभिक मुस्लिम साहित्य में इसका नाम उद्दंड विहार अंकित मिलता है। उल्लेखनीय है कि प्राचीन उद्दंडपुरी अपने मठों और विहारो के लिए मशहूर था। यही कारण है कि इसे विहार नाम दिया गया। बाद में मुसलमानों के काल के समय इसमें शरीफ जोड़ दिया गया। ठोस और प्रामाणिक के अभाव में इस शहर के प्राचीन नाम को लेकर काफी विवाद है। हालांकि आधुनिक विहार शरीफ से कांस्य की कुछ बौद्ध प्रतिमाओं पर उत्कीर्ण नयनपाल और सुरापाल के समय ९ वीं सदी का अभिषेक जिस पर उद्दंडपुरा अंकित है।स्थल के प्राचीन नाम का प्रमेय विश्वसनीय प्रमाण कहा सकता है। अतः अलग अलग विद्वानों ने भिन्न भिन्न नाम से उच्चारित किया है । जैसे बेबलर ने उदंतपुरी को दंडपुरा कहा है। तिब्बती स्त्रोतों में उंगयनपुरी (उड़नेवाला शहर) कहा है। दक्षिण में उदक नदी के बहने से इसका नाम उदकपुरी पड़ गया।

स्थापना काल-

मुस्लोन के मतानुसार गोपाल का पुत्र धर्मपाल ने अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद दैदीप्तमान ओदंतपुरी महाविहार का निर्माण करवाया। जिज्ञासा की बात यह है कि बुस्लोन द्वारा ओदंतपुरी क्या महाविहार की स्थापना को पौराणिक कक्षाओं द्वारा जिस प्रकार से धर्मपाल को जोड़ा गया ठीक उसी प्रकार तारानाथ द्वारा सोमपुर विहार (पहाड़पुर बांग्लादेश) की स्थापना को देवपाल से जोड़ा गया देवबाल द्वारा निर्मित संपूर्ण विहार के संबंध में कहीं-कहीं कहानी सही प्रतीत नहीं होती क्योंकि पहाड़पुर में मिले कुछ मिट्टी के मोहर्रम पर प्राप्त लघु शिलालेखों के अनुसार सोमपुर विहार धर्मपाल द्वारा बनवाया गया था। इस प्रकार

पुरातात्विक तथ्यों के अनुसार बुस्लोन द्वारा वर्णित शासक और तारानाथ द्वारा उल्लिखित विहार का अस्तित्व था लेकिन कोई भी परंपरागत तिब्बती स्तोत्र संपूर्णता से इसको स्वीकार नहीं करते। इस प्रकार उदंतपुरी महाविहार के काल निर्धारण की समस्या बनी रह जाती है।

भौगोलिक स्थिति-

उदंतपुरी महाविहार की भौगोलिक स्थिति के संबंध में कुछ स्पष्ट नहीं है सामान्यता इतिहासकार इस महाविहार का स्थान आधुनिक विहार शरीफ मानते हैं १९७२ में निर्मित जिला नालंदा का मुख्यालय वर्तमान में विहार शरीफ पचाने नदी के २५ डिग्री उत्तर और ८३डिग्री ३१पूर्व स्थित है। जो वक्तियारपुर और राजगीर से रेल लाइन से जोड़ा है इस प्रकार उपर्युक्त तथ्यों के आधार नालंदा जिला मुख्यालय बिहार शरीफ स्थित हदपर का विशाल क्षेत्र ही ओदंतपुरी महाविहार क्षेत्र था।

विक्रमशिला महाविहार, विश्वविद्यालय -

विक्रमशिला विश्वविद्यालय गंगा तट पर मगध में गंगा तट पर एक पहाड़ी के ऊपर स्थापित था इस विश्वविद्यालय का निर्माण आठवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में पाल वंश के राजा धर्मपाल ७७० इसी पूर्व से ८१० ने स्थापित किया था इस विश्वविद्यालय में बड़े से बड़े भवन शिक्षकों तथा विद्यार्थियों के लिए रहने व पढ़ने के लिए सुव्यवस्थाएं प्राप्त थी। विश्वविद्यालय के भवनों के मध्य में भगवान बुद्ध की प्रतिमा एवं चारों और १०८ मंदिरों का निर्माण था।

इस विश्वविद्यालय के परिता दीवारों का भी निर्माण था जिसमें ६ द्वार स्थापित थे इस विश्वविद्यालय में एक विशाल पुस्तकालय था जिसमें हजारों पुस्तकें भंग अन्य विषयों में प्राप्त हुआ करती थी यह विश्वविद्यालय में दिक्षु कुलपति होता था और भिक्षुओ अर्थात् शिक्षकों के माध्यम से ही इस विश्वविद्यालय का निर्माण व संचालन चलता था । इस विश्वविद्यालय में १०८ शिक्षा प्रदान तथा ३००० छात्र विद्याध्ययन करते थे, परंतु इन शिक्षक वह छात्रों का जीवन जीने का तरीका केवल साधारण मात्र के रूप में होता था । इसमें मौखिक परीक्षा अर्थात्

नैतिक शिक्षा की भी व्यवस्था प्राप्त थी । जिससे छात्र सरल व संयमी के रुप में बने रहें। इस शिक्षा में जो छात्र पास होता था उसे प्रमाण पत्र दिया जाता था।

इस विश्वविद्यालय का काल आठवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी के अंत तक शिक्षा का प्रचार प्रसार तथा पठन-पाठन ही कर पाया था। अतः अंत में कुतुबुद्दीन ऐवक ने गद्दी को धारण करते ही १२०३ में अपने सेनापति बख्तिहार से पूर्णता नष्ट- ध्वस्त करवा दिया था । जिसके बाद से बौद्ध शिक्षा प्रणाली शनै:-शनै: पतन की ओर प्राप्त होने लगी थी।

विक्रमशिला महाविहार को आठवीं शताब्दी में पाल राजा धर्मपाल ने इस महाविहार की आधारशिला रखी थी। जो चौथी शताब्दी तक विद्या के केंद्र के रूप में अंतरराष्ट्रीय जगत विख्यात थी। धर्मपाल ७७५ से ८०० ईसवी ने यहां अनेक बुद्ध विहार बनवाए थे। तथा उन्हें दान भी दिया करता व्याख्या कारों के लिए भी राजा ने या अनेक विशाल भवन बनवाए थे । तेरहवीं शताब्दी तक उनके अधिकारियों ने विश्वविद्यालय को प्रोत्साहन देने का क्रम जारी रखा। इस विहार के भिक्षु सामान्यत: बड़े विद्वान होते थे। अल्पकाल में ही इस विहार की ख्याति हिमालय पार कर गई थी। तिब्बत और विक्रमशिला में अनेक शताब्दी तक ज्ञान विनिमय में होता रहा। तिब्बत से ज्ञान पिपासु भारतीय पंडितों के चरणों में बैठकर अध्यन करने आते थे।

विद्यार्थियों की संख्या-

विक्रमशिला में जब ख्यात पंडितों की इतनी बड़ी मंडली एकत्रित थी तो विद्यार्थियों की संख्या भी अवश्य बड़ी होगी। वह बारहवीं शताब्दी में यहां के महाविहार में तीन हजार भिक्षु थे। इस महा विहार में एक अति समृद्ध और विशाल पुस्तकालय भी था। जो मुसलमान विध्वंसकारों ने इसकी प्रशंसा की थी।

सामान्य प्रबन्ध-

विक्रमशिला महाविहार के सामान्य प्रबंध में नियामक महास्थवीर होते थे। विभिन्न कार्यों तथा उपसंपदा और प्रवज्जा- दान नित्य निरीक्षण तथा नियुक्ति भोजन और अच्छादन का समविभाग और विहार के अन्य कार्यों का उत्तरदायित्व संभाल लेने के लिए परिषद थी। जिसके विभिन्न समस्यों को यह कार्य में किया जाता था । भिक्षु अध्यापक बड़ी सादगी का जीवन व्यतीत करते थे। ऐसा कहा जाता है कि चार भिक्षु पर जितना भी व्यय होता था उससे अधिक एक अध्यापक को नहीं मिलता था।

महाविहार का प्रबन्ध-

महाविहार का प्रबंध छह द्वार पंडितों मे विभक्त था। जिसके प्रधान स्वयं महास्थवीर होते थे। इन द्वार पंडितों का कार्य विहार में प्रवेशार्थी विद्यार्थियों की योग्यता की परीक्षा लेना था। राजा कनक के शासनकाल में विहार में निम्नलिखित द्वारपाल थे पूर्वी द्वार पर आचार्य रत्नाकरशालि पश्चिमी द्वार काशी के वागीश्वरकीर्ति उत्तरी द्वार नरोपा और दक्षिणी द्वार प्रभाकरमति, प्रथम मध्य द्वार कश्मीर के रत्नवज्र और द्वितीय मध्य द्वार गौड़ के ज्ञान श्री मित्र।

पाठ्यक्रम उपाधि-

विक्रमशिला महाविहार मुख्य रूप से व्याकरण, न्याय, तत्व ज्ञान तथा तंत्र के अध्ययन के लिए प्रसिद्ध था। इस प्रकार यहां का पाठ्यक्रम इतना विस्तृत या उदार नहीं था जितना नालंदा का था किंतु वह विभिन्न विषयों के अध्ययन का उपाधिक्रम ज्ञान नहीं है। उसका पाठ्यक्रम जितना व्यवस्थित था संभवतः उतना पाठ्यक्रम अन्य किसी प्राचीन भारतीय विद्यापीठ का नहीं था। क्योंकि यहां के स्नातको का समावर्तन के अवसर पर बंगाल के शासकों की ओर से उपाधि या प्रमाणपत्र दिए जाते थे। तिब्बती सूत्रों से ज्ञात होता है कि जेतारी तथा रत्नवज्र को क्रम सा महिपाल तथा कनक नामक राजाओं की ओर से उपाधियां दी गई थी।

स्थानिक विशिष्ट विद्वानों की स्मृति सर्वदा ताजी बनाए रखने के लिए विहार के कुछ कक्ष की दीवारों पर उनके चित्र बना दिए जाते थे।

महाविहार का विध्वंस-

१२०३ ईसवी में बख्तियार के नेतृत्व में मुसलमानों ने इस विहार को नष्ट भ्रष्ट कर दिया। उन्हें इस विहार से दुर्ग का भ्रम हो गया। उस समय शाक्यश्रीभद्र इस महाविहार के महास्थवीर थे । तवागत- ए- नासिरी में विध्वंस का विस्तृत विवरण मिलता है। इस ग्रंथ में लिखा है कि यहां के निवासी अधिकांश ब्राह्मण अर्थात् बौद्ध और भिक्षु थे। ये सभी मुंडकेश थे। इन सब को तलवार के घाट उतार दिया गया। हिंदू धर्म के संदर्भ में भारी संख्या में पुस्तकें थी। इस पर जब मुसलमानों की दृष्टि पड़ी तो उन्होंने कई हिंदुओं को इनका मर्म समझने के लिए बुलाया किंतु सभी मारे जा चुके थे। सारी सूचना मिलने पर ज्ञात हुआ कि यह सारा दुर्ग तथा नगर एक महाविहार था। महास्थवीर शाक्य श्रीभद्र अपने कतिपय साथियों के साथ ज्ञान बचाकर किसी प्रकार तिब्बत को पलायन कर गए। इस प्रकार इस प्रसिद्ध महाविहार का दु:खद अन्त था।

जगदल विश्विध्यालय का इतिहास-

प्राचीन बंगाल में पालवंश के राजाओं द्वारा स्थापित बौद्ध ज्ञान का अंतिम महान केंद्र जगदल का भव्य महाविहार था। नालंदा विक्रमशिला उदंतपुरी आदि जैसे विश्वविद्यालय शिक्षा केंद्र के क्रम की उन्नति कड़ी थी। यह महाविहार पालवंश के राजा रामपाल द्वारा स्थापित किया गया था। जिनका शासनकाल १०८८ से ११२० इसी बीच था उस समय पाल राज्य पतन के कगार पर था। अंदरूनी कलह बाहरी आक्रमण के कारण वह धीरे-धीरे डरता हुआ बंगाल के उत्तरी क्षेत्र में सिमट कर रह गया था।

जगदल महाविहार का स्थल निर्धारण विवाद से परे नहीं है। रामपाल के दरबारी कभी संध्यकार नंदी ने चार सर्ग वाले महाकाव्य रामचरित की रचना की थी। जो कि संस्कृत में राघव पांडवीय जैसे महाकाव्य की विशेष श्रेणी के अनुसार रचा गया था। इसके प्रत्येक लोक के सीधे क्रम से तो रामायण वर्णित राम कथा है पर प्रतिलोम क्रम से कवि के संरक्षक राजा रामपाल की जीवन कथा है। जो वास्तव में महाकाव्य का अभीष्ट विषय है। वारेंद्र ने गंगा व करतोया नदियों के किनारे रामपाल द्वारा स्थापित रमावती नगर का वर्णन करते हुए कवि तीसरे सर्ग में निम्नलिखित शब्दों में प्रसिद्ध जगदल महाविहार का वर्णन करते हैं।

वारेंद्री जहां अन्य प्रकार के हाथी आयतीत है इसके जंगलों मैं यहां जगदल के महा विहार में सभी के लिए प्रेम संचित था। जिस देश ने अपने हृदय में लोकेश (बोधिसत्व) की प्रतिमा धारण की गई थी। तथा जिसकी महान ख्याति भी दिनों दिन बढ़ रही थी। महाविहार की महान अध्यक्ष तारा की प्रतिमा उपस्थिति से उपरोक्त वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि रामपाल के समय में वारेंद्री में बौद्ध धर्म प्रचलित था और उसका केंद्र जगद्दल महाविहार था।

आधुनिक विद्वानों ने उसके स्थल निर्धारण के विषय में पर्याप्त मतभेद किए हैं। एच.पी. शास्त्री इसको पूर्वी बंगाल में स्थित मानते हैं और ऐसी राय देते हैं कि यह रामावती में स्थित नहीं था। एस. एन. दास गुप्त कहते हैं कि यह गंगा व करतोया नदियों के संगम पर स्थित था। किंतु तिब्बती स्त्रोत निर्देश करते हैं कि यह महाविहार उड़ीसा में स्थित था। उनके अनुसार विहार बंगाल में आक्रमणकारियों द्वारा महाविहार के ध्वस्त कर दिए जाने पर यह अधिसंख्य बौद्ध व तांत्रिक सिद्धो का शरण स्थल था। ऐसा भी वर्णन मिलता है कि जब १२०२ इसी में बख्तियार खिलजी द्वार उदंतपुरी महाविहार नष्ट हुआ तो उसके अध्यक्ष शाक्य श्रीभद्र ने वहां से भागकर जगद्दल महाविहार में शरण ली थी।

राहुल सांकृत्यायन के मतानुसार शाक्य श्रीभद्र विक्रमशिला महाविहार के अंतिम धर्माधिकारी बने और जब यह संख्या आक्रमण कारि द्वारा ध्वस्त की गई तो वे वहां से भागकर

जगद्दल महाविहार चले गए। पाल कालीन अन्य महाविहारों के समान ही यह महाविहार भी मूलत: नष्ट हो गया था। इसके अवशेषों के प्राप्त न होने से इसकी क्रमिक इतिहास की उपलब्धियों को जानना संभव नहीं है। इसके विषय में जो थोड़ी जानकारी मिलती है वह तिब्बती वर्णित श्रीभद्र के जीवन वृतांत से मिलती है। उसके इस महाविहार के अभिन्न दिनों के इतिहास पर कुछ प्रभाव पड़ा पड़ता है। साथ ही साथ यहां के अन्य प्रसिद्ध विद्वानों के कृतित्व विषय में भी ज्ञान होता है। कश्मीरी भिक्षु शाक्य भद्र कश्मीर से मगध के बौद्ध विद्या केंद्रों को देखने आए थे।परंतु ओदंतपुरी और विक्रमशिला महाविहारों को विध्वंस देखकर पूर्व की ओर आगे बढ़ते हुए जगद्दाल पहुंच गए थे।

सोमपुर विहार इतिहास-

पालकालीन एक अन्य प्रसिद्ध महाविहार सोमपुर अथवा सोनपुरी था। तारानाथ के अनुसार इसकी स्थापना देव पालने की। नालंदा से प्राप्त तेराकोटा मुद्रा में प्राप्त धर्मपाल के नाम से धर्मपाल इसका संस्थापक माना गया है। इस मुद्रा में निम्नलिखित पंक्तियां प्राप्त होती है-१.श्री सोनपुर २.श्री धर्मपाल देव ३.महाविहारीय भिक्षु संघस्थ ४. धर्मपाल महाविहार।

इसके निर्माण में धर्म सेन और सिंह सेन निरीक्षक थे और इसका निर्माण राजकीय कोष से हुआ था। इसकी स्थिति के विषय में संभावना की जाती है कि यह पहाड़पुर में कोई प्राचीन बौद्ध मंदिर था । जिसे राजा धर्मपाल ने विहार के रूप में परिवर्तित कर दिया था। आधुनिक बांग्लादेश में पहाड़पुर के समीप राजशाही जिले के सोमपुर गांव में इसके खंडहर प्राप्त हुए हैं। प्रारंभिक पाल राजाओं के संरक्षण से लेकर महिपाल के प्रथम समय तक इसकी ख्याति थी। तिब्बती ग्रंथ "पग - सम - जोन- जेंग " (सुम्प) में सूचना मिलती है कि महिपाल प्रायः इस विहार में पूजा के लिए आया करता था। यह एक विशाल महाविहार था जिसके मध्य में एक जैन प्रतिमा भी थी। ऐसा प्रतीत होता है कि यह जैनियों का कोई स्थानीय था जिसे बौद्ध धर्मावलंबी पाल राजाओं ने भिक्षुओं के निवास स्थान के रूप में परिवर्तित कर दिया था। इस

महान विहार में न केवल भारत के विभिन्न भागों से अपितु तिब्बत से भी विद्यार्थी यहां अपने ज्ञान पिपासा को शांत करने आते थे।

सोमपुर महाविहार का निर्माण अत्यंत सुनियोजित ढंग से किया गया इसके चारों ओर एक बड़ी सी दीवार, जिसके उत्तर में मुख्य द्वार, मध्य में एक मंदिर तथा एक भोजन गृह और कुल १७७ कक्ष थे। यहां पर ६०० से ८०० भिक्षु निवास करते थे इस महाविहार में विद्वानों तथा आचार्य द्वारा सुरक्षित रखी गई बहुत सी पांडुलिपियों से सूचित होता है कि यहां पर एक प्रकार का पुस्तकों का संग्रह था जिसे पुस्तकालय कहा जा सकता है। इस महाविहार में प्रवेश के लिए नियम तथा शिक्षा विधि विक्रमशिला के समान ही थी। आचार्य महापंडित तथा भिक्षु अरण्यक यहां के विद्वानों की उपाधियां हुआ करती थी। अतुल्यपाद अथवा अद्वयवज्र यहां के प्रसिद्ध विद्वानों में से एक थे। अतिश दिपंकर भी यहां कुछ समय रहे तथा इस विहार में निवास के दौरान उन्होंने अन्य विद्वानों के सहयोग से "भावविवेककृत माध्यमक प्रदीप "का अनुवाद किया। अन्य कहीं बौद्ध संस्कृत ग्रंथों के तिब्बती विद्वानों के सहयोग से तिब्बती भाषा में सोनपुरी विहार में अनुवाद कार्य हुए। संपूर्ण विहार तांत्रिक धर्म का प्रमुख केंद्र था। तिब्बती परंपरा के अनुसार तांत्रिक विद्वान में वैरोचन रक्षित सोमपुरी विहार के लक्ष्यों के संग के प्रमुख पंडित शरण के शिष्य थे। मुस्लिम आक्रमण के समय बौद्ध भिक्षु नेपाल और तिब्बत में शरण के लिए चले गए। इस प्रकार मुसलमानों के विनाश तथा अन्य कारणों से बौद्ध तिब्बती सांस्कृतिक परंपरा के आदान-प्रदान के प्रमुख केंद्र इस महाविहार की लीला नष्ट भ्रष्ट हो गई थी।

बौद्ध विहारों का पतन-

भगवान बुद्ध के समय से तेरह सौ वर्षों तक भारत में बौद्ध धर्म के उत्कर्ष का समय रहा। सातवीं सदी में इस देश में पच्चीस सौ विहार, मठ, विद्यालय आदि थे। सातवीं सदी में चीनी तीर्थयात्री ह्वेनसांग ने पन्द्रह वर्ष पैदल घूम कर एक लाख साठ हजार भिक्षुओं पच्चीस

सौ विहार, मठ विद्यालय को गिना था। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं थी, कारण व्यास के नाम पर प्राप्त श्री विष्णु पुराण से सिद्ध है कि **"दशकोटय: स्मृता आर्यविभूव बौद्ध मार्गिण:"** तथा **"सनाम्रा गौतमाचार्या दैत्यपक्ष विवर्धक: सर्वतीर्थेषुतेनैव यन्त्राणि स्थापितानिवै**

अर्थात् दस करोड़ आर्य बौद्ध धर्मी हो चुके हैं उसे गौतम आचार्य कहते हैं वह रक्षसों के पक्ष को बढ़ाने वाले थे उसने सभी तीर्थों में अपना केंद्र स्थापित किया है। इससे स्पष्ट है कि अगर यह पुराण व्यास को ही माना जाए तो पंद्रह सौ वर्ष पूर्व में ब्राह्मणों के सभी तीर्थों में प्रभावशाली बौद्ध केंद्र ही थे। इन सभी का मूलच्छेद नौवीं शताब्दी में शंकराचार्य के अनुयायियों ने तीन चौथाई भाग और बचे हुए बांकी एक चौथाई भाग को ग्यारह सौ बानवे से बारह सौ दो से बीच मुसलमानों के द्वारा जो विदेशों से आए थे उन्होंने विहार को लूटा और जलाकर पूरा नष्ट - भ्रष्ट कर दिया गया था।

सम्राट हर्षवर्धन ६४७ के बाद हिंदू शासकों ने ब्राह्मणों का पक्ष लेकर आठवीं शताब्दी में खुल्लम-खुल्ला बौद्ध विहारों एवं भिक्षुओं की हत्या की थी । यह सामूहिक हत्याकांड हिंदू राजा सुधन्वा ने किया था (शंकर विजय नामक संस्कृत में)

शुंग का आक्रमण -

मौर्य वंश के अंतिम सम्राट बृहद्रथ को धोखे से मार कर स्वयं सम्राट बनने वाले उसके ब्राह्मण सेनापति पुष्यमित्र शुंग (१८५ से १४९)ने मौर्य कि बौद्ध धर्म के अनुकूल नीति से असंतुष्ट ब्राह्मणों का नेतृत्व किया था। दिव्यावदान नामक बौद्ध ग्रंथ और अनेक समकालीन बौद्ध लेखों में तथा प्रसिद्ध इतिहासकार लामा तारानाथ ने भी पुष्यमित्र को बौद्ध विरोधी बताया। पुष्यमित्र शुंग ने पाटलिपुत्र के कुक्कुटाराम विहार जिसमें अशोक की धर्म शिक्षा हुई थी उसे नष्ट करना चाहा। किंतु द्वार पर सिंहनाद भयभीत हो गया था तथापि उसने भिक्षुओं का वध करते हुए सेना के साथ सागल (मध्य प्रदेश से जालंधर पंजाब) तक के स्तूपों और विहारों को

नष्ट किया था। वहां उसने यह घोषणा की थी कि वह प्रत्येक बौद्ध भिक्षु के मस्तक के लिए सौ दीनार देगा। **यो में श्रमण सीरोदास्यति दस्याहं दीनार शतं दास्यामि।**

हूणों का आक्रमण-

मध्य एशिया से आए हुए लुटेरे हूणों के आक्रमण ने बौद्ध धर्म को अत्यधिक हानि पहुंचाई यह लोग बड़े निर्दई थे। इन्होंने बौद्ध भिक्षुओं की हत्या एवं मठों और विहारों को बड़ी हृदय हीनता से नष्ट किया। हूण राजा तोरमाल और उसके पुत्र मिहिरकुल ने हजारों की संख्या में बहुत भिक्षुओं का कत्ल किया किंतु बौद्ध के विहार, मठ आदि को नष्ट भ्रष्ट करके भयानक रूप से हत्याकांड मचाया था। इस प्रकार बौद्ध की ही नहीं अपितु भारत की संस्कृति को भी उन्होंने भारी नुकसान पहुंचाया था।

शशांक आक्रमण -

बंगाल के गौड़ राजा ब्राह्मण शशांक ने बौद्ध पर भारी अत्याचार किए थे। व्हेनसांग इसी समय भारत आया था। इस चीनी यात्री ने लिखा है कि उस समय सारा देश बौद्ध विहारों से भरा पड़ा था फिर भी कश्मीर के लोगों ने बौद्ध विहारों के विरुद्ध विद्रोह किया हुआ है। यह समाचार उसने सुना था इसके अतिरिक्त शशांक के अत्याचारों की कथा भी उसने लिखी है। शशांक ने बोधगया के विहारों का विध्वंस और महाबोधि वृक्ष को जड़ से उखाड़ कर जला डाला था। उससे मगध के बौद्ध संघ पर बड़ा संकट आया। बाद में उसने कन्नौज के बौद्ध राजा गृहवर्मन जो सम्राट हर्षवर्धन का बहनोई था। उस का वध कर दिया इसलिए सम्राट हर्षवर्धन को उससे लड़ना पड़ा और परिणाम स्वरूप शशांक का राज्य भी हर्षवर्धन के राज्य में आया। शशांक की राजधानी करण सुवर्ण थी। जिसकी पहचान आधुनिक मुर्शिदाबाद जिले के अंतर्गत रंगाघाटी नामक से की गई है। हर्षवर्धन का बड़ा भाई राज्यवर्धन जब मालवा पर विजय करने गया था तब शशांक ने षड्यंत्र रच कर उसकी हत्या कराई थी। शशांक की राजधानी के मूल रूप में ब्राह्मण और पशुपत का षड्यंत्र था।

बौद्ध विद्या-केन्द्रों पर मुस्लिम आक्रमण

नालन्दा विहार -

ह्वेनत्सांग के अनुसार यहां आम्रकुंज के मध्य भाग में एक नाग रहता था। उसी के नाम पर उसे नालंदा कहने लगे। एक अध्यमत के अनुसार वहां बोधिसत्व सबसे ने प्रचुर मात्रा में दान दिया था। इसलिए इसका नाम नालंदा पड़ा यहां । यहां पहले आम्रवन का जंगल था।भगवान बुद्ध के महापरिनिर्वाण के कार्य १०० वर्ष बाद शकादित्य नामक राजा ने यह विहार बनवाया। यह ईशा की ५वी शताब्दी में बना ऐसा चीनी यात्री का मत है और कुमारगुप्त प्रथम का नाम महिंद्र आदित्य शहादत को इतिहास में कुमारगुप्त प्रथम ४१५से ४५५ ईसवी माना गया है। कुमारगुप्त के उत्तराधिकारियों ने इसका पूर्ण विकास किया और इसे एक नया रूप दिया। यहां के पंडित कमलसील और पदम संभव ने महायान को तिब्बत पहुंचाया तिब्बत से एकमेव राष्ट्रीय धर्म है यहां से ही दीपकर श्री ज्ञान जैसे महा विद्वान आचार्य पंडित हुए थे। यह स्थान आयोग के नालंदा जिले के मुख्यालय राजगिरी से १३ किलोमीटर उत्तर में पड़ता है पटना से ५५ मील दूर दक्षिण में प्राप्त है।

कन्नौज के यशोवर्मन का पत्थर पर खुदा एक लेख,पालवंश के शक्ति शाली राजा धर्मपाल और देवपाल के ताम्र -पत्रों पर लेख और श्रीविजय (जावा-सुमात्रा) के शैलेन्द्र वंश के विदेशी राजा बालपुत्र देव के शिलालेख भी वहां पाये गये हैं और १२वीं शती के विपुल श्रीभित्र के लेख भी प्राप्त हुए हैं। इस ताम्र पत्र में यह उल्लेख किया गया है कि शैलेन्द्र वंश तिलक यवभूमि पाल महाराज श्री बालपुत्र देव ने नालन्दा में एक विहार का निर्माण कराया और उसके लिए राजा देवपाल से कहकर राजगृह विषय (जिले) के नन्दिवनक, मणिवाटक, नाटिका पाम तथा हस्तिपाम और गया विषय जिले) के धमालक गांव का दान किया। पाल वंशीय भारतीय राजाओं के समान श्रीविजय के शैलेन्द्र राजा भी नालन्दा महाविहार के संरक्षक थे; यह इस ताम्र पत्र से सूचित होता है ।

नालन्दा बौद्ध विहार होने पर भी यहाँ वेद, वेदांग, ब्राह्मण और जैन तत्व ज्ञानों को पी पढ़ाया जाता था। एक इतिहासकार का कहना है कि चीनी यात्री इत्सिंग ने लिखा है कि नालन्दा के मठ में पुरोहितों की संख्या अधिक है। यह संख्या ३००० से भी अधिक होगी। इस विश्वविद्यालय में अत्यन्त श्रेष्ठ पुस्तकालय था,जो रत्नसागर, रत्नदीद तथा रत्नरंजक नामक तीन भवनों में स्थित था। रत्नोदधि की इमारत नौ मंजिल थी। सम्राट हर्षवर्धन ने बौद्ध दर्शन की प्रसिद्ध इस पीठ को अनन्त दान दिये। उसकी अट्टालिकायें, वहाँ का असाधारण व्याख्यान, चिन्तन द्वारा ज्ञान -वितरण उसकी सुविस्तृत पाठ्य-प्रणाली दूर और समीप के उसके विद्यार्थियों को जमघट और इससे बढ़कर इसके आचार्यों तथा छायों के उन्नत आचार उथा गम्भीर विद्वत्ता, तत्कालीन बोध जगत गर्व की वस्तु थी ।

राजा उस महान संस्था को समर्थ, शक्तिमान तथा जिज्ञासा-प्राण बनाने में अपनी उदार दान-वृत्ति का वस्तु से परस्पर स्पर्धा करते थे। **(संकलियाकृत The University of Nalanda, Mardas, १९३४) - भारतीय इतिहास कोश नामक ग्रंथ (उत्तर प्रदेश शासन द्वारा प्रकाशितों)** में लिखा है कि गुप्त सम्राट बालादित्य ने ४७० ई. में एक सुन्दर मन्दिर का निर्माण कराया और उसमें भगवान बुद्ध को ८० फीट ऊंची ताँबे की मूर्ति की स्थापना करायी, किन्तु आज यह पता नहीं कि उस मूर्ति का क्या हुआ ?

आज नालन्दा के खण्डहर में एक पुरानी बुद्ध प्रतिमा है। काले पत्थर में इस विशालकाय पूर्ति के आस-पास के ग्रामीण वित्तिया बाबा' कहकर तेल डालते हैं। इससे लोगों की मनोकामनाओं की मूर्ति हो जाती है। ऐसा अन्धविश्वास यहाँ के ग्रामीणों में प्रचलित है| ग्रामीणों का देव होने के कारण सरकार का पुरातत्व विभाग इस मूर्ति के बारे में कुछ भी नहीं कर सकता।

विक्रमशिला विहार-

युवराज होने को अवस्था चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य चम्पा भागलपुर का प्रदेशाधिकारी था। उस वक्त सुल्तानगंज की दोनों पहाड़ी टेकरियों पर उसने और एक भिक्षु ने मिलकर कुछ मन्दिर बनवाये । विक्रम के नाम पर यह स्थान विक्रमशिला के नाम से प्रसिद्ध हुआ। पीछे उसी भिक्षु के अवतार पाल वंशीय महाराजा धर्मपाल (७६९-८१५ ई) ने गंगा के तट पर स्थित इस मनोरम देश पर एक सुन्दर विहार बनवाया। यही विक्रमशिला महाविहार था।

विद्या के केन्द्र के रूप में विक्रमशिला की सफलता का प्रचुर प्रमाण इस बात से मिलता है कि उसने बहुत बड़ी संख्या में प्रतिभाशाली विद्वान् पैदा किये । उसने विलक्षण धर्माचार्यों को जन्म दिया, जिन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा ज्ञान तथा धर्म के क्षेत्र में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान किये और उनके इसी योगदान के आधार पर तिब्बत जैसे एक पूरे देश की सभ्यता तथा संस्कृति का वस्तुतः निर्माण हुआ। तिब्बत ने बड़ी कृतज्ञता के भाव से विक्रमशिला के कुछ स्नातकों की स्मृति को सुरक्षित रखा और कुछ को वहीं धर्म-गुरु के पद पर बिठा दिया ।

वर्त्तमान भागलपुर बिहार के पास इसके भग्नावशेष आज भी विद्यमान है, जो कि तुर्को द्वारा सन् १२०३ में नष्ट कर दिये गये थे। ९वीं शताब्दी से १२वीं शताब्दी तक विक्रमशिला महाविहार, नालन्दा के समकक्ष विश्वविद्यालय था । पाल वंश का राजगुरू इस विहार का प्रधान होता था। आचार्य रत्नकीर्ति १० वी नर शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यहां के प्रधान आचार्य थे। शाक्य श्रीभद्र विक्रमशिला के अन्तिम प्रधान आचार्य थे । विक्रमशिला तुर्को द्वारा जला दिये जाने पर वे कुछ प्रधान बौद्ध पण्डितों के साथ तिब्बत में चले गये। इस महान् विद्या-केन्द्र को नष्ट करने वाला, दुष्ट, तुर्क लुटेरे का नाम मुहम्मद-बिन-बख्तियार था, जिसने महाविहार के पत्थरों को गंगा में फेंक दिया। यह महाविहार ११वीं शताब्दी के आरम्भ में अपनी वैभवशाली अवस्था में था। इसके चार द्वारों में चार द्वार पण्डित (महा विद्वान्) और मध्य में दो महान आचार्य रहा

करते थे । पूर्व में रत्नाकर शान्ति व्याकरण और न्याय पढ़ाते थे। दक्षिण द्वार में वागीश्वर कीर्ति न्याय, व्याकरण और काव्य पढ़ाते थे। पश्चिम में प्रज्ञाकरमति धर्म और दर्शन पढ़ाते थे। उत्तर के द्वार में नरोत्पल नादपाय महायान और तन्त्र पढ़ाते थे। मध्य में, ज्ञानमित्र और रत्नवज्र भगवान बुद्ध के आदि कल्याण, मध्य नीति कल्याण, पर्यवसान कल्याण, सर्वतोभद्र धर्म का रास्ता 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' बतलाते थे।

विक्रमशिला महाविहार में १०८ मन्दिर,१०८ महाविद्वान् और ८ द्वार पण्डित थे तथा ८०० मनुष्यों के मैठने का एक सभा-मण्डप था।
इस नष्ट किये गये बौर केन्द्र के बारे में कुछ वर्ष पूर्व एक समाचार-पत्र में इस प्रकार लिखा था किविक्रमशिला विद्यालय की कालविक्यी गरिमा को फिर से जीवित करने के लिए तथा भागलपुर के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं व्यावसायिक इतिहास को पुनः आलोक में लाकर विश्व के प्रत्येक मानव धर्म के विद्वान का ध्यान आकर्षित करने के उद्देश्य से विक्रमशिला महोत्सव अक्टूबर से यहां धूमचाम के साथ मनाया जायगा।[111]

तक्षशिला विहार-

वर्तमान पाकिस्तान के रावलपिण्डी से २० मील उत्तर-पश्चिम में सरायकला नामक स्टेसन निकट स्थित था। यह मध्य काल में सबसे बड़ा विश्वविद्यालय था। बुद्ध काल और उसके पूर्व युग में भी तक्षशिला की ख्याति एक विशाल विश्वविद्यालय के रूप में सम्पूर्ण जम्बुदीप में फैली हुई थी। बुद्ध काल में तक्षशिला के वैद्यों और युद्ध-विद्याध्यापकों की मांग दूर-दूर देशों तक थी। यहां चारों वेद और अठारह विद्याएं पढ़ाई जाती थी।

बौद्ध धर्म से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण व्यक्ति यहाँ के स्नातक तक थे । जीवक वैद्य, अंगुलीमाल, महाली लिछवी, राजा प्रसेनजित, बन्धुत मल्ल आदि अनेक बुख अनुयायियों को

[111] नवभारत टाइम्स १२-१०-१९८४

शिक्षा यहीं पर हुई बादर के पात्र होते थे। यहाँ अशोक ने धर्मरा जिक स्तूप की स्थापना करायी थी। अशोक पुत्र कुणाल के यहाँ के यहाँ का उप-राजा था। भद्रशिला भी इसका नाम था।

तक्षशिला ७वीं शताब्दी में कश्मीर राज्य का अंग हो गया था। ११ वीं शताब्दी के आरम्भ में मुहम्मद गजनवी के और १२वीं शताब्दी में मुहम्मद गौरी नामक विदेशी तुकों के आक्रमणों से यह स्थल वीरान बन गया था। उसके बाद यह महान विश्वविद्यालय हमेशा के लिए खण्डहर के रूप में बदल गया और अव उसका नटावशेग शाहजी की देरी' नाम से मौजूद है। दिव्यावदान नामक बौर पन्थ के अनुसार बोधिसत्व ने अपने एक पूर्व जन्म में यहाँ पर एक आक्षण काचक को अपना सिर दान में दिया था, जिस कारण इस स्थान का नाम तपशिला पड़ा। शासन में भी तक्षशिला नाम पड़ने का यही कारण बताया है ।

संस्कृत काव्य रघुवंश (४२) के अनुसार राम के भाई भरत के पुत्र तक्ष ने इस नगरी की स्थापना की थी। तक्षशिला की जनता ने कतिपय अमात्यों के अत्याचारों से जमकर विद्रोह कर दिया। इस विद्रोह का दमन करने के लिए बिन्दुसाने अशोक को यहाँ भेजा था। अशोक ने इस विद्रोह का उचित निपटारा किया था। ईसवी सन् ७८ में भगवान बुद्ध के जो अवशेष तक्षशिला में स्थापित किये थे। वे सन् १९२१ कार्तिक पूर्णिमा के दिन यह अस्थि अवशेष सार्वजनिक रूप से प्रदर्शित किये जाते हैं और हाथों पर सवारी बड़ी घुमधाम से निकाली जाती है जिन पंक्तियों के लेखक स्वयं इन अस्थि अवशेषों के दर्शन कर चुके है | तक्षशिला के विद्रोही एका अम्भीक ने देश-द्रोह का रवैय्या अपनाते हुए ३३६ ई.पू. यूनानी आक्रमक सिकन्दर से सन्धि करके सदा के लिए भारत का यह मुख्य द्वार विदेशियों के लिए खोल दिया था। परन्तु तक्षशिला का सम्पूर्ण ध्वंस राजा तोरमाण द्वारा ५१२ ई.में किया गया। यहां की सहस्रो पुस्तकों की होली जला डाली । अन्तिम मुहम्मद ध्वंस गजनवी और मुहम्मद गौरी था।

तक्षशिला में बहुत से बुद्ध विहार थे, जिसमें 'धर्माजिक महाविहार' सबसे बड़ा था। धर्माजिक चैत्य की पाषाण -कचूक में बड़ी मुन्दर मूर्तियां उत्कीर्ण थीं। आस-पास में अनेक

प्रतिमा घरों में भगवान बुध्द और बोधिसत्व अवलोकितेश्वर की थी। यह अशोक ने बनवाया था। बाद में अशोक के नाम पर किसी ने विस्तार किया। धर्मराव बुद्ध और अशोक दोनों को प्रयुक्त होता था। इसकी तबाहियों का खण्डहर ३ मील लम्बा और २ मील चौल है। इस हद के बहुत दूर तक संघाराम आदि के चिह्न परे पड़े हैं। इन तवाइयों में बवरखाना स्थान में सबसे बड़ा स्तूप चिह्न है । यह सम्राट अशोक के बनवायें हुए विशाल स्तूपों के चिढ़ है।

शक लोगों को शक्ति केवल काठियावाड़, गुजरात, कोकण मालवा, महाराष्ट्र, मधुरा और पूर्वी पंचाब तक सीमित नहीं रही, उन्होंने गान्धार तथा पश्चिमी पंजाब पर भी अपना आधिपत्य कर लिया। इन देशों में शकों के बहुत से सिक्के उपलब्ध हुए हैं और साथ ही अनेक उत्कीर्ण लेख भी। इनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण लेख तक्षशिला में प्राप्त हुआ है। जो एक ताम्र पत्र पर उत्कीर्ण है। इस लेख के अनुसार महाराज महायान के राज्य में क्षहरात के क्षत्रप लिअक कुमुलक के पुत्र पतिक ने तक्षशिला में भगवान शाक्य मुनि के अप्रतिस्यापित शरीर धातु को प्रतिष्ठापित किया था।[112]

भन शक क्षत्रपों का समय ई.पू.द्वितीय शताब्दी के उत्तराई से ई.पू. प्रथम शती के मध्य तक था। यहाँ के कनिक स्तूप आज के हजार खत्री कारवां सपय स्थान पर थे । (लेखक) चीनी पाजी हुएनत्सांग ने वशिला में जिस कुणाल स्तूप का अवलोकन किया था, वह भी वहाँ सदाई में मिल गया है। पर अनेक ऐतिहासिकों का मत है कि यह स्तूप मौर्य काल के बाद का है। जिस स्थान पर अशोक के दन्त-मुद्रा से अंकित कपट लेख के अनुसार कुणाल को अन्या किया गया था, यहाँ के पुराने स्तूप को बढ़ाकर बाद में अत्यन्त विशाल स्तूप का निर्माण किया गया। हुएनत्सांग ने इसी स्तूप को देखा था।[113]

[112] प्राचीन भारत पृष्ठ सं. ३१९
[113] प्राचीन भारत पृ.सं. २६७

ओदन्तपुरी विहार-

१२वीं शताब्दी ईसवी में यह मगध की राजधानी थी। १५४१ ई.में शेरशाह ने यहाँ से हटाकर पटना राजधानी बनाई । बिहार नगर का असली नाम यशोवर्मनपुर था, पर यशोवर्मनपुर के बजाय लोग इस स्थान को जसपुर कहने लगे । यहाँ एक बहुत बड़ा बुद्ध विहार होने के कारण इसका नाम ओदन्तपुरी विहार कहलाने लगा। १२वीं शताब्दी के अन्त में भारत में इस्लामिक आक्रमण जोर पकड़ रहा था। दिल्ली में गुलाम वंश का संस्थापक कुतुबुद्दीन ऐबक बिहार और बंगाल जीतने में लगा हुआ था। उसका साथी तथा गुलाम सरदार तुर्क सेनापति मुहम्मद बख्तियार खिलजी केवल दो सौ घुड़सवारों के साथ बिहार और बंगाल की ओर बढ़ रहा था ।

११९७ ई. में उसने बिहार उद्दण्डपुर (ओदन्तपुरी) वर्तमान बिहार-शरीफ आज के नालन्दा जिला के बौद्ध बिहार को किला समझकर आक्रमण कर दिया। वहाँ उस समय पाल वंश का शासक इन्द्रमन राज्य कर रहा था। वह कमजोर और नाममात्र का राजा था। इसलिए विना रोक-टोक बौद्ध भिक्षुओं की हत्या करके उसने वहां के पुस्तकालय को भी जलाकर नष्ट कर डाला। इस विहार के नाम पर ही आज का बिहार प्रान्त कहा जाता है । यह नाम उन्हीं रखा गया था। इसके पूर्व इस प्रदेश का नाम मा जाता है। यह नाम उन्हीं तुर्कों द्वारा ८०० वर्ष पूर्व मगध उस समय यहाँ के मुण्डित ब्राह्मणों को अर्थात् बौद्ध भिक्षुओं को समूल नष्ट करके बौद्ध विहार का भी उच्छेद कर डाला । मुहम्मद को लूट में बहुत धन मिल गया,परन्तु ऐसा एक भी मनुष्य नहीं बच सका,जो वहाँ की पुस्तकें पढ़कर बताता कि उसमें क्या है ? उसके बाद उसे मालूम हुआ कि परकोटे वाला यह नगर एक विद्यापीठ था और हिन्दुस्तान की भाषा में उसे विहार कहते हैं।

ओदन्तपुरी वर्तमान बिहार शरीफ है, जिसके पास काले पहाड़ पर विहार था। वहां पर आजकल दरगाह है । इसी नष्ट किये हुए विहार की समान आकृति वाला बहुत बड़ा विहार तिब्बत में आज भी है । ओदन्तपुरी के आदर्श और नमूने पर महाराजा मगधेश्वर धर्म पाल ने

(७६९-८०२) में इसे बनवाया था। उसका नाम बुसम-यस का महाविहार है। कुछ इतिहासकारों के अनुसार ओदत्तपुरी का पुस्तकालय नौ मञ्जिली इमारत थी। ओदन्तपुरी के विश्वविद्यालय ने तान्त्रिक साहित्य के अध्ययन में विशेषता प्राप्त की थी और यहाँ १००० विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते थे । पाल वंश के संस्थापक गोपाल ने यहां एक महा विहार की नींव रखी थी। उसके पुत्र मगधेश्वर धर्मपाल ने उसे पूरा किया था। प्रसिद्ध इतिहासकार लामा तारानाथ के अनुसार ओदन्तपुरी में १००० भिक्षु स्थायी रूप से रहते थे। यहाँ महायान और स्थविरवाद दोनों सम्प्रदाय के वर्तमान थे। कहा जाता है कि कभी-कभी १२००० प्रव्रजित यहाँ एकत्रत होते थे। जो एक विदेशी तुर्क के धर्म स्नेह की कृपा से नष्ट कर दिया गया था।

जगदल विहार-

वर्तमान बंगाल देश में इसके खण्डहर राजाशाही जिले में जगदल नामक स्थान में हैं। बौद्ध राजा पालवंशीय बड़े विद्या-प्रेमी थे। राजा रामपाल कौमार्यावस्था में ही राजगद्दी पर बैठाये जाने पर अत्यन्त प्रतिभा सम्पन और शक्तिशाली हुआ । उन्होंने एक नयी राजधानी करतोया के सङ्गम पर बनायी, उसका नाम गमावती रखा। यह अपने शासन के वें वर्ष में स्थापित की गयी थी। यहाँ उसने जगदल नामक बौद्ध विहारों और विश्वविद्यालय स्थापित किया। यह मुश्किल से १५० वर्ष कायम रह सका: क्योंकि विदेशी मुसलमान लुटेरों ने इसे नष्ट कर दिया। मगधेश्वर सुरपाल द्वितीय के पुत्र राजा रामपाल (१०७७-११२० ई) के गुरू, अभयाकर गुप्त थे। अभयाकर गुप्त का जन्म झारखण्ड जिले के वैद्यनाथ के आस-पास के प्रदेश में हुआ था। वे शास्त्रों के पक्के पण्डित थे। बाद में इन्होंने सिद्ध अवघूति पाद के शिष्य 'सीरिपा' से सिद्धचर्या की दीक्षा ली थी। ये नालन्दा और विक्रमशिला दोनों विश्वविद्यालय के पण्डित माने जाते थे।

इनका देहान्त ११२५ ई. में हुआ । यहाँ के एक अन्य आचार्य विभूति चन्द्र काल-चक्रयान के महान् पण्डित थे। दुर्भाग्यवश इन विद्या केन्द्रों में जिस साहित्य की रचना हुई थी, उसका

बहुत-कुछ भाग नष्ट हो गया है। परन्तु नेपाल और चीन में जो कुछ सुरक्षित है, उससे हमें पता चलता है कि यहाँ का अतीत गौरवशाली रहा है।

वल्लभी और गुजरात के अन्य तीर्थ-

हुएनत्सांग और इत्सिग दोनों ने एक और प्रमुख महाविहार का वर्णन किया है। वह पश्चिमी भारत का वल्लभी का महाविहार था। यह भी एक प्रधान विश्वविद्यालय था । इत्सिंह लिखते हैं कि यहाँ विद्यार्थी दो-तीन वर्ष तक अपना अध्ययन पूरा करने के लिए रहते थे। उस काल में वलभी में थेरवादी (हीनयानी) बौद्धों की सबसे बड़ी संस्था थी । वलभी के नष्टवाशेष आज भी मौजूद हैं और-वर्तमान गुजरात राज्य के दक्षिण-पश्चिम भाग में है। चीनी यात्री हुएनत्सांग ने भरुकछ (भड़ौच) होते हुए वलभी की चीनी यात्रा की थी। यह भावनगर से २२ मील उत्तर-पश्चिम में स्थित है। ७वी शताब्दी के उत्तरार्ध में यहां १०० बुद्ध विहार थे।इनमें ६००० बौद्ध भिक्षु रहते थे और स्थिरमति गुणमति नामक प्रख्यात आचार्य रहा करते थे।

इसके अलावा गिरनार (जूनागढ़) में सातवीं शताब्दी में ५० विहार और उनमें २००० भिक्षु रहते थे। धांक (पोरबंदर) से ७ मील दक्षिण पूर्व नामक स्थान है जहां मंजूश्री के नाम पर एक हुआ और चार बौद्ध गुफा भी हैं। भाग से कुछ मील दूर पश्चिम में सिद्ध सर है जहां कई बौद्ध गुफाएं हैं। भावनगर से ३० मील दक्षिण में तलजा है जहां ३६ गुफाएं और एक कुंड है। तलजा से दक्षिण पश्चिम में साहना है। जहां ६२ बौद्ध गुफाएं हैं और कांपित्य अत्याधुनिक नवसारी के समीप है। इसका विवरण आगे होगा कुछ इतिहास वाद का मानना है कि यह सोलापुर (महाराष्ट्र)में भी था।

इस प्रकार गुजरात राज्य में कुछ धर्म से संबंधित प्रख्यात स्थान विधर्मियों के आक्रमण से नष्ट हो गए थे। यहां के मैत्रक राजा ६५० ई. में भी बौद्ध धर्म के प्रति उदार दृष्टिकोण रखते थे। मैत्रक राजा ध्रुव भट्ट जो सम्राट हर्षवर्धन का दामाद था वह एक परम बौद्ध था। वह प्रतिवर्ष एक सभा बुलाता था। देश के कौने -कौने से बौद्ध भिक्षुओं को आमंत्रित कर विभिन्न प्रकार

के दान देता था। तथा ७ दिन तक भोजन कर कराता था। मैत्रक वंश ने ५००ई. से ७७० ईसवी तक सौराष्ट्र पर शासन किया। उसकी राजधानी वलभी में भी थी।वह वलभी आज बालाघाट नामक गांव बन गया है जो किसी दिन समृद्ध नगर हुआ करता था। इस नगर को अरबी लुटेरे मुसलमानों ने ७७० इसी में ध्वस्त कर दिया था।इसका प्रथम राजा द्रोणा सिंह था। यहां सातवीं शताब्दी ईस्वी में कई सौ करोड़पति व्यक्ति थे और यह नगरी विदेशियों से बहुमूल्य वस्तुओं का आयात निर्यात का केंद्र भी थी।उस समय वलभी के विश्वविद्यालय में व्याकरण न्याय तर्क और अर्थशास्त्र की उच्च शिक्षा का अच्छा प्रबंध था।

सम्राट हर्षवर्धन की मृत्यु के उपरांत वलभराज्य उत्तरोत्तर शक्तिशाली होता गया। किंतु ७७० ईसवी में अरबों ने उसे समाप्त कर दिया यहां अनेक ख्याति प्राप्त बौद्ध आचार्य रहते थे। सातवीं शताब्दी में है नालंदा के समकक्ष तथा दूर-दूर से विद्यार्थी अध्ययन करने आते थे। सिंध पर ७०० बार आक्रमण करने वाले लुटेरों ने इस वंश का भी अंत कर दिया था।

वलभी के राजा पूर्वोक्त ध्रुवभट्ट के ३ पुत्र से रणसिंह, ध्रुवसेन प्रथम और घरपट्ट जो क्रमशः शासन करते थे और वलभी का दूसरा राजा ध्रुवसेन का पुत्र घरसेन हुआ। उसे परम महाराजाधिराज परमेश्वर और चक्रवर्ती आदि विरुद्ध धारण किए इन सब के राजकाज की अंतिम तिथि ७७० ईसवी थी।[114]

मंगरोल –विहार-

अभी हाल ही में ही गुजरात के जूनागढ़ जिले के मंगरोल नामक स्थान में भूमि के नीचे दबी हुई लगभग १००० वर्ष पूर्व की २५ मूर्तियां मिली हैं। जिनमें २० भगवान बुद्ध की हैं। यह प्रतिमाएं एक टीले में दबी पड़ी थी। जो मिट्टी खोदते समय प्राप्त हुईं।[115]

[114] प्राचीन भारत का इतिहास डॉ राम शंकर त्रिपाठी पृष्ठ २०६ दिल्ली १९८८
[115] धर्मदूत नवंबर १९७९

देवनीमोरी –विहार-

गुजरात के साबरकांठा जिले में शामलाजी नामक गांव के पास देवनीमोरी नामक स्थान पर महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ विश्वविद्यालय में पुरातत्व विभाग ने १९६२ ई में किए उत्खनन में एक बहुत बड़े स्तूप में ७ इंच व्यास एवं ५ इंच मोटा पत्थर भी मिला है । उसमें रेशमी वस्त्र के छोटे थैले में कई अवशेष और एक छोटी सोने की ऊंची डिब्बी और थोड़ी राख भी रखी थी। इसमें करंड कॉपर में दो लेख भी खुदे हुए हैं। उसके ढक्कन पर भगवान बुद्ध का प्रतीत्यसमुत्पाद संबंधी वचन खुदा हुआ है।[116]

शतवाहन और पश्चिमी राजाओं का इतिहास और खुदा हुआ

झैझपुर विहार-

अभी हाल में पुरातत्व विभाग को गुजरात के पड़ौच जिले में झैझपुर के निकट एक पहाड़ी में बौद्ध गुफाएं प्राप्त हुई हैं । जो लगभग २०० वर्ष प्राचीन है। ये पर्वत को खोदकर बनाई गई है, जो नर्मदा नदी के किनारे स्थित है। इन गुफाओं में कमरे, बरामदे, खम्बे आदि बड़े सुन्दर ढंग से बने । और इनमें ब्रहमी लिपि में लेख भी अंकित है।

(पर्षदूत अप्रैल १९६७) मंगरोल अभी हाल में ही गुजरात के चुनागढ़ जिले के मंगोल नामक स्थान में भूमि के नीचे दबी हुई लगभग पूर्व की २५ मूर्तियां मिली है। जिनमें २० भगवान बुद्ध की हैं। यह प्रतिमाएं एक टीले में देवी पड़ी थी. जो मिट्टी खोदते समय प्राप्त हुई। (पर्षदूत नवम्बर १९७१)

देवनी मोरी गुजरात के सबरकाय जिले में शामलाजी नामक गांव के पास देवनीमोरी' नामक स्थान पर महाराजा सयाजीराव गायकवाड विश्वविद्यालय में पुरातत्व विभाग ने १९६२

[116] लेख मराठी कृष्ण ३७९ डॉक्टर पी.वी. मिरासी

ई में किये उत्खनन में एक बहुत बड़े स्तूप इंच व्यास एवं ५ इंच मोटा पत्थर भी मिला है, उसमें रेशमी वस्त्र के छोटे थैली में कई अवशेष और एक छोटी सोने की ऊंची डिब्बी और थोड़ी राख भी रखी थी। इसमें करंड कॉपर में दो लेख भी खुदे हुए है, उसके डक्कन पर भगवान् बुद्ध का प्रतीत्य समुत्पाद सम्बन्धी वचन खुदा हुआ है। (शातवाहन और पश्चिमी का बाकि और खुदा हुआ। लेख, मराठी ड्रा वी वी मिराशी) कम्पिल्य यहाँ रंग-बिरंगे ईटों के टुकड़े मिले हैं। १९५७ ई. में बड़ौदा विश्वविद्यालय के पुरातत्व विभाग के मध्य वहा सुब्बाराव ने शोध के लिए एक मुख्य दल उस स्थान पर भेजा था । लगभग ३ दिन की खुदाई के बाद से आशाजनक परिणाम आने लगे। धातु के लगभग १४ सिक्के मिले।

सन् २६३ से सन३०५ साल के शाप यश के विश्वसेन नाम के राजा के चिढ़ योड़े सिक्कों पर होने का विश्वास इविझसकायें ने किया है। इन सिक्कों के साथ सौराट के सन् ५०० के मैवक वंश के शाखमसक्य) पंजाबों की चोडी मुहर मिट्टी और पत्थर के बर्तनों के अवशेष सुशोभन के साधनों के अवशेष तथा अन्य कला कारीगरों के नमूने और दूसरे बहुत से सिक्के भी मिले हैं। इतिहासकारों का दावा है कि दूसरी सदी की आस-पास की संस्कृति के ये अवशेष होने चाहिए। इसके अलावा यहाँ भगवान बुद्ध का अस्थिपात्र एवं उस पर दश बलबुर की प्रशंसा लिखी लेख में उस स्थल का उल्लेष कर्मान्तिक है। सम्भवतः कम्पिल्य का रूपान्तर कर्मान्त हो गया हो (कम्पित्य गुजरात का प्रमुख बौद्ध वीर्थ स्थल हो गया था)।[117]

कम्पित्य विहार-

यहां रंग बिरंगे ईटों के टुकड़े मिले हैं। १९५७ ईस्वी में बड़ौदा विश्वविद्यालय के पुरातत्व विभाग के अध्ययन डॉक्टर सुब्बाराव ने शोध के लिए एक मुख्य दल उस स्थान पर भेजा था। लगभग ३ दिन की खुदाई के बाद से आशा जनक परिणाम आने लगे धातु के लगभग १४ सिक्के मिले सन २६३ से लगभग सन ३०५ साल के क्षत्रप वंश के विश्वसेन नामक राजा के चिन्ह थोड़े

[117] जनबन्धु कौशाम्बी-मासिक युग उदयोघर दिल्ली, अगस्त, १९९६

सिक्कों पर होने का विश्वास इतिहासकारों ने किया है। इन सिक्कों के साथ ही सौराष्ट्र के सन ५०० के मैत्रक वंश के अवशेष राजाओं की थोड़ी मुहर मिट्टी और पत्थर के बर्तनों के अवशेष सुशोभन के साधनों के अवशेष तथा अन्य कलाकारों के नमूने और दूसरे बहुत से सिक्के भी मिले हैं।

इतिहासकारों का दावा है कि दूसरी सदी की आस-पास की संस्कृति के यह अवशेष होने चाहिए। इसके अलावा यहां भगवान बुद्ध का अस्थिपात्र एवं उस पर दस बल बुद्ध की प्रशंसा लिखी है। लेख ने उस स्थल का उल्लेख कर्मान्तक है। संभवत: कंपित्य का रूपांतर क्रमांक हो गया हो कंपनी गुजरात का प्रमुख बौद्ध तीर्थ स्थान था।[118]

ताम्रलिप्ती विहार-

जिला-मिदिनापुर (पश्चिम बंगाल) में आधुनिक तामलुक नामक स्थान पर समुद्र के किनारे पर था। अशोक-पुत्री भिक्षुणी संघमित्रा बोधि वृक्ष की शाखा को लेकर पाटलीपुत्र से नांव में बैठकर गंगा के मार्ग से ताम्रलिप्ती पहुंची थी। इसकी दूरी नालन्दा से ५० योजन बतायी गयी है। चीनी यात्री हुएनत्सांग वर्तमान बंगाल देश के जसोर नगर से १५० मील पश्चिम में यात्रा करते हुए ताम्रलिप्ती पहुंचा था। भारत के व्यापारी यहाँ से समुद्री मार्ग से बर्मा, मलाया, प्राय द्वीपों से व्यापार करते थे। ताम्रलिप्ती का उल्लेख महाभारत एवं पुराणों में भी है। यह प्राचीन काल में बहुत बड़ा बन्दरगाह था। 'तामलुक महाभारत में वर्णित महाराजा मयूरध्वज की सन्तान बताता है और मयूर ही उनकी पताका का प्रतिक है। यह ताम्रलुक से बर्मा (आज का म्यानमार) चला गया, ऐसा बताया जाता है। फाययान जब ताम्रलिप्ती आया, जब यह नगर एक बन्दरगाह था। उसने इस जनपद में २४ संघाराम.देखे,जहाँ श्रमण संघ रहते थे और बौद्ध धर्म का अच्छा प्रचार था।

---

[118] जन बंधु कौशांबी मासिक योग उद्बोधन दिल्ली अगस्त १९९६

सोमपुरी विहार-

यह भी एक बौद्ध विहार था। इसे मगधेश्वर धर्मपाल ने बनवाया था। यह स्थान राजाशाही जिले के पास पहाड़पुर पर स्थित है । कंधाहार कंधा हार के पास भगवान बुद्ध के भिक्षा पात्र मौजूद है पहले यह पात्र वैशाली में था वहां से पेशावर में आया था ध्यान के समय यह पेशावर में भी ही था हुए इंसान के समय यह पारस ईरान में था और अब कांडाहर के समीप है सर आज रैली मिशन लिखते हैं कि मुसलमान लोग इसे बड़ी श्रद्धा से पूछते हैं और पैगंबर का कमंडल कहते हैं यह स्थान अब अफगानिस्तान में है अफगानिस्तान में प्राप्त है।

कोलापुर विहार-

महाराष्ट्र के उत्तर भाग में कोल्हापुर प्राप्त है। इसके आसपास बौद्धों के अनेक चीज और निशानियां मिले हैं। लगभग १८८० ईसवी में एक बौद्ध स्तूप में बिल्लौर का एक स्तूप मिला था जिसके ऊपर सम्राट अशोक का लेख मिला था इससे ज्ञान पड़ता है कि कोल्हापुर अति प्राचीन स्थान है इस प्रकार और भी अनेक प्रसिद्ध महान बौद्ध स्मारक विश्वविद्यालय भी विदेशी तुर्कों के धर्म स्नेह की कृपा से जलाकर राख हो गए। इन विदेशी लुटेरों द्वारा विद्या केंद्रों एवं सारनाथ मथुरा कुशीनगर आदि के बौद्ध विहारों को ग्रसित किए। तथा अनेक संधान ज्ञान के प्रतीक ग्रंथों को नष्ट कर दिया।

इतिहास में एकदम विज्ञान के प्रति ग्रंथों को नष्ट किया जाना भारी अन्याय और है उदाहरण कश्मीर का कश्मीर की राजधानी श्रीनगर के पास जयेंद्र विहार कन्नौज का भद्र बिहार पंजाब का चिन्ह बिहार आंध्र के धान कट ऑफ बिहार ऐसे सैकड़ों बड़े-बड़े विद्या केंद्र से जिन्हें ब्राह्मणों की ध्वनि लीला के बाद बचे हुए को अरबी उत्तर की लुटेरों द्वारा नष्ट किया गया था।[119]

---

[119] भारतीय इतिहास कोश पृष्ट सं.१६८-१६९

असुरूर विहार-

पाकिस्तानी पंजाब के गुजारणवाला जिले में एक स्थान है । हुएत्सांग यहां ६३३ ईसवी में आया था ।वहां उस समय २०० फुट ऊंचा स्तूप था। इसे चीनी यात्री ने देखा यह भी सम्राट अशोक का ही बनाया हुआ था। इस जगह का पुराना नाम उदयनगरी या उदय नगर था ।यहां के उजड़े हुए खंडहर ३ मील के घेरे में हैं और कहीं-कहीं २० गज ऊंचे ऊंचे हैं इस समय वहां एक छोटा सा गांव आबाद है।

तृतीय अध्याय

वैदिक एवं बौद्ध कालीन शिक्षा प्रणाली का तुलनात्मक विवेचन

भारत में वैदिक काल २५ ईसवी पूर्व से ५०० ईसवी पूर्व में जिस शिक्षा प्रणाली का प्रदुर्भाव हुआ था उस समय की वैदिक शिक्षा प्रणाली प्राप्त थी । तत्पश्चात बौद्ध काल ५ ई. पू. से १२ ई. पूर्व में बौद्धों के माध्यम से जिस शिक्षा प्रणाली का प्रारंभ हुआ था उसे ही बौद्ध शिक्षा प्रणाली के रूप में जाना जाता था। यहां इन वैदिक एवं बौद्धिक शिक्षा प्राणियों में तुलनात्मक अध्ययन करते हैं । तथा उनकी समानता एवं विभिन्नताएं क्या- क्या प्राप्त होती थीं।

बौद्ध एवं ब्राह्मणीय शिक्षा प्रणाली -

बौद्ध शिक्षा प्रणाली ब्राह्मणीय शिक्षा प्रणाली के समान ही प्रतिपादित मानी जाती थी। बौद्ध एवं ब्राह्मणीय शिक्षा के शिलाधार एक ही प्रतिपादित होते थे। बौद्ध एवं ब्राह्मण शिक्षा में संघ एवं भिक्षुओं के रूप में विद्यमान रहते थे। संघ का तात्पर्य वानप्रस्थ एवं सन्यासियों का स्थान होता है जो कि मोक्ष की प्राप्ति में संलग्न रहते थे। ब्राह्मण ब्रह्मचारियों के रूप में प्रतिपादित होते थे जो कि आजीवन ब्रह्मचारी रहकर नैष्ठिक दीक्षा के साथ विचरण किया करते थे। बौद्ध भिक्षुओं का भी विवरण ब्राह्मणीय शिक्षा के अनुरूप ही हुआ करता था जैसे आवास से लेकर भोजन रहन-सहन पठन-पाठन तक तथा हिंसा से दूर रहते थे। भिक्षुओं तथा ब्रह्मचारियों का मुख्य उद्देश्य केवल मोक्ष मार्ग का ही होता था। क्योंकि समस्त दुखों से निवृत्त होकर भवसागर को पार करना एवं ब्रह्म को प्राप्त करना आदि मुख्य कर्तव्य होता था।

बौद्ध शिक्षा प्रणाली एवं ब्राह्मणीय शिक्षा प्रणाली अनेकों रूपो के माध्यम से विभिन्नता प्राप्त होती थी। ब्राह्मणीय शिक्षा प्रणाली में प्रारंभिक शिक्षा गृह पर ही माता- पिता एवं भाई बहन के माध्यम से शिक्षा प्रदान की जाती थी। तत्पश्चात् गुरुकुल एवं आश्रम में बालक को

भेजकर शिक्षा दी जाती थी। तथा ब्राह्मण शिक्षा को बौद्ध ग्रंथों में वैयक्तिक रूप में माना जाता था। किंतु ब्राह्मणीय शिक्षा सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय की कामना करती है।

बौद्ध शिक्षा प्रणाली में बौद्ध शिक्षा प्रारंभ से ही बौद्ध संघों में दी जाती थी। बौद्ध भिक्षु लोग अपना गृह त्याग करके पूर्ण रूप से संघों को समर्पित हो जाते थे और संघों के नियम अनुसार जीवन व्यतीत किया करते थे। उनकी शिक्षा-दीक्षा से लेकर सभी कार्य संघों में ही पूर्ण हुआ करते थे। बौद्ध विद्यालयों की पाठ्य शिक्षा ब्राह्मणी विद्यालयों से भिन्न थी। तथा वैदिक ग्रंथों का अध्ययन नहीं किया जाता था। बौद्ध विद्यालयों में शिक्षक ब्राह्मण न रकर जनसामान्य के रूप में सुयोग्य शिक्षक एवं उपाध्याय होते थे। वह शिक्षा समान रूप से सामान्यजनों को श्रद्धा पूर्वक प्रदान की जाती थी। अतः बौद्ध शिक्षा ब्राह्मणीय शिक्षा के तुल्य किसी भी रूप में वर्णित नहीं हो सकती थी।[120]

वैदिक एवं बौद्ध शिक्षा प्रणाली में समानताएं –

ड्रॉ.ए.एस.अल्तेकर ने कहा है कि जहां वैदिक एवं बौद्ध शिक्षाओं का आपस में समन्वय प्राप्त था कि जिससे दोनों शिक्षाओं की समानता आदर्श रूप में थी। और दोनों शिक्षा प्रणाली विधियों का एक समान रूप में अनुकरण हुआ करता था।

- वैदिक एवं बौद्ध शिक्षाओं में अहिंसा रूपी पाठ पढ़ाया जाता था। अहिंसा परमो धर्मः।
- वैदिक एवं बौद्ध शिक्षा में ब्रह्मचारी तथा भिक्षुओं को पलंग पर सोना वर्जित था। वैदिक एवं बौद्ध शिक्षाओं में वर्षा ऋतु में यात्रा करने के लिए वर्जित था।
- वैदिक एवं बौद्ध शिक्षा में विद्यार्थी एवं भिक्षुओं को अल्पाहारी एवं गृह त्यागी होना पड़ता था।
- वैदिक एवं बौद्ध शिक्षा में पुस्तकीय ज्ञान कम एवं नैतिक शिक्षा पर अत्यधिक बल दिया जाता था।

[120] बौद्ध शिक्षा का सामान्य रुप पुस्तक पृष्ठ संख्या ८१

- वैदिक एवं बौद्ध शिक्षा में विद्यार्थी एवं भिक्षुओं को उपवास रखने की विधियां प्राप्त थी।
- वैदिक एवं बौद्ध शिक्षा में विद्यार्थियों को अपने माता पिता को छोड़कर आश्रम व विहारों में विद्या अध्ययन के लिए जाना होता था।
- वैदिक एवं बौद्ध शिक्षा में विद्याध्यन प्रारंभ करने की अवस्था निश्चित हुआ करती थी।
- जिस प्रकार वैदिक शिक्षा में विद्यार्थी का उपनयन संस्कार होता था उसी प्रकार बौद्ध शिक्षा में पब्बजा संस्कार होता था।
- वैदिक शिक्षा में उपनयन संस्कार के पश्चात विद्यार्थियों को ब्रह्मचारी के रूप में जाना जाता था। उसी प्रकार बौद्ध शिक्षा प्रणाली में पब्बजा संस्कार के पश्चात सामनेर के रूप में जाना जाने लगा था।
- वैदिक एवं बौद्ध शिक्षा में सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय की भावना प्राप्त थी।
- वैदिक शिक्षा के गुरुकुल नगरों से दूर शांत वातावरण वनों व नदियों के किनारे पहाड़ों के पास होते थे। वैसे ही बौद्ध शिक्षाओं के स्थान मठ विहार भी नगरों से से दूर शांत वातावरण में हुआ करते थे।
- वैदिक एवं बौद्ध शिक्षा में सुख सुविधाएं कम दी जाती थी ।
- वैदिक एवं बौद्ध शिक्षा में विद्यार्थियों को आवास से लेकर भोजन तक की सुविधाएं प्राप्त है होती थी।
- वैदिक एवं बौद्ध शिक्षाओं में विद्यार्थियों का भोजन सात्विक एवं कम मात्रा में दिया जाता था।
- वैदिक एवं बौद्ध शिक्षाओं में छात्र अल्पाहारी होते थे।
- वैदिक एवं बौद्ध शिक्षाओं में तीनों प्रकार के दुखों को दूर करने वाली शिक्षा का अध्ययन किया जाता था ।
- वैदिक एवं बौद्ध शिक्षाओं में शारीरिक मानसिक एवं आध्यात्मिक शिक्षाओं पर शिक्षा दी जाती थी।

- वैदिक एवं बौद्ध शिक्षाओं में मोक्ष प्राप्ति का मार्ग बताया गया कि जिसस दुख बंधनों से छुटकारा प्राप्त कर सकें ।
- वैदिक एवं बौद्ध शिक्षा में शिक्षार्थियों को शिक्षा नि;शुल्क दी जाती थी।
- वैदिक शिक्षा बौद्ध शिक्षा प्रणाली में समानताएं वैदिक तथा बौद्ध शिक्षा प्रणाली राज्य के अनुशासन से बिल्कुल भिन्न थी जिसमें राज्य शासन का कुछ भी हस्तक्षेप नहीं कर सकता था।
- वैदिक तथा बौद्ध शिक्षा में शिक्षण संस्थानों की आय का प्रबंध केवल मात्र भिक्षा तथा दान के रुप में ही हुआ करता था।
- वैदिक तथा बौद्ध शिक्षा का संगठन प्राथमिक एवं उच्च शिक्षा दो स्तरों के रूप में दी जाती थी।
- वैदिक तथा बौद्ध शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य एक ही समान प्राप्त था। इन दोनों शिक्षाओं में बालकों तथा छात्रों के चरित्र निर्माण में अधिक बल दिया जाता था।
- वैदिक एवं बौद्ध शिक्षा प्रणाली में सामान्य विषयों के पठन-पठन मैं मौखिक विधियों का ही स्वरूप प्राप्त था। अतः व्याख्या, व्याख्यान,प्रश्नोत्तर एवं वाद-विवाद आदि तथा जो क्रियात्मक विषयों को पढ़ाया जाता था। उसमें केवल दो ही विधि प्रदर्शन एवं अभ्यास का ही यथा योग्य प्रयोग किया जाता था।
- वैदिक एवं बौद्ध शिक्षा प्रणालियों में आचार्य तथा शिक्षकों के लिए संयमी एवं योग्य बना रहना पड़ता था। जिससे समाज में उच्च स्थान को प्राप्तकीय बना रहना होता था।
- दोनों शिक्षा प्रणालियों में छात्रों एवं शिक्षकों को गुरुकुल एवं विहारों के नियमों का कठोरता पूर्वक पालन करना होता था। और अपना जीवन केवल साधारण व्यक्ति की भांति जीते थे। तथा दुर्व्यवसनों से अत्यंत दूर रहते थे।
- वैदिक एवं बौद्ध शिक्षा प्रणालियों में शिक्षक तथा शिक्षार्थियों में अत्यंत सरल व मधुर पवित्र रूप से संबंध हुआ करते थे।

- वैदिक एवं बौद्ध शिक्षा प्रणालियों में शिक्षाएं आवासीय रूप में प्रदान की जाती थी।विद्या आरंभ के समय वैदिक शिक्षा प्रणाली में उपनयन संस्कार का होना एवं बौद्ध शिक्षा में पवज्जा संस्कार का होना अनिवार्य होता था।
- वैदिक शिक्षा प्रणाली में वेदारंभ संस्कार हुआ करता था उसी प्रकार बौद्ध शिक्षा में उपसंपदा संस्कार हुआ करता था।
- वैदिक एवं बौद्ध शिक्षा प्रणाली में शिक्षार्थी एवं आचार्यों को साधारण रुप से रहना पड़ता था। और पहनावा कटि एवं उत्तरी वस्त्र के रूप में हुआ करता था।
- वैदिक शिक्षा तथा बौद्ध शिक्षा में ब्रह्मचारी एवं भिक्षुओं को एक समान दिनचर्या का अनुकरण करना होता था।
- वैदिक एवं बौद्ध शिक्षाओं के उद्देश्य एक ही समान रूप में प्राप्त होते थे।
- वैदिक एवं बौद्ध शिक्षा में शारीरिक दंड निषेध हुआ करता था।
- वैदिक एवं बौद्ध शिक्षा प्रणाली में शिक्षा नि:शुल्क रूप में दी जाती थी।

वैदिक एवं बौद्ध शिक्षा प्रणाली में असमानताएं -

वैदिक एवं बौद्ध शिक्षा प्रणालियों का वर्णन विभिन्न प्रकारों में प्राप्त था। बौद्ध धर्म का उदय वैदिक धर्म के विरुद्ध प्राप्त हुआ था। जिसमें वैदिक तथा बौद्ध शिक्षा की असमानताओं का होना भी निश्चित था। तथा इन दोनों शिक्षा प्रणालियो की असमानताओं का वर्णन निम्न प्रकार से प्राप्त हैं।[121] वैदिक शिक्षा प्रणाली को पारिवारिक शिक्षा प्रणाली भी कहा जाता था क्योंकि वैदिक प्रारंभिक शिक्षा घरो में ही माता-पिता आदि के माध्यम से हुआ करती थी तथा बौद्ध शिक्षा प्रणाली केवल संगवा बिहार ओं के रूप में ही हुआ करती थी।

[121] भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं पृष्ट सं. १९-२०

- वैदिक शिक्षा प्रणाली में धन-संपत्ति न्यून रूप में प्राप्त थी किंतु बौद्ध शिक्षा प्रणाली के विहारों में अत्यधिक संपत्ति प्राप्त थी जिसके माध्यम से भिक्षुओं को पूर्ण रूप से सुविधाएं उपलब्ध होती थीं किंतु वैदिक शिक्षा में पूर्ण सुविधाएं नहीं दी जाती थी।
- वैदिक शिक्षा प्रणाली का मुख्य सिद्धांत आध्यात्मिक रूप में प्राप्त था बौद्ध शिक्षा प्रणाली का सिद्धांत प्रजातांत्रिक के रूप में प्राप्त होता था।
- वैदिक शिक्षा प्रणाली में विद्यार्थी अपनी शिक्षा पूर्ण करके समावर्तन संस्कार का उपदेश प्राप्त करने के पश्चात विद्यार्थी घर को वापस लौट जाता था और गृहस्थ जीवन में प्रवेश कर लेता था किंतु बौद्ध शिक्षा प्रणाली में भिक्षु को संसार रूपी दु:ख बंधनों को छोड़कर अजीवन ब्रह्मचारी की उपाधि प्राप्त कर लेते थे।
- वैदिक शिक्षा प्रणाली का मुख्य योगदान आचार्य तथा शिष्यों की आदर्श रूपी परंपराओं पर निर्भर थी किंतु बौद्ध शिक्षा प्रणाली विहार में शिक्षा संस्थानों के संघ के रूप में प्राप्त हुआ करती थी।
- वैदिक शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत भिक्षा मांगने की प्रथा प्राप्त थी जिसमें ब्रह्मचारी उच्चारण करके भिक्षा मांगते थे तथा बौद्ध शिक्षा प्रणाली में भिक्षु मौन रूप में ही भिक्षा मांगा करते थे।
- वैदिक शिक्षा व्यवसाय के रूप में प्राप्त थी किंतु बौद्ध शिक्षा का उतना अधिक महत्व नहीं था।
- वैदिक एवं बौद्ध शिक्षा प्रणाली में समानताएं वैदिक शिक्षा के अंतर्गत शिक्षा गुरुकुलओं के अनुरूप हुआ करती थी तथा बौद्ध शिक्षा प्रणाली के अनुसार बौद्ध शिक्षा संघों के अनुरूप दी जाती थी।
- वैदिक शिक्षा प्रणाली में भिक्षाटन के लिए केवल शिष्य जी जाया करते थे और वो भी बोलकर भिक्षा मांगते थे। एवं बौद्ध शिक्षा प्रणाली में गुरु शिष्य दोनों ही भिक्षा मांगने के लिए जाते थे पर मौन होकर भिक्षा मांगा करते थे।

- वैदिक शिक्षा प्रणाली में प्राथमिक शिक्षा देने की व्यवस्था परिवारों में ही हुआ करती थी एवं बौद्ध शिक्षा प्रणाली में शिक्षा की व्यवस्था केवल मठ एवं विहारों में ही प्रचलित थी।
- वैदिक शिक्षा प्रणाली में वैदिक धर्म की शिक्षा ही अनिवार्य हुआ करती थी। लेकिन बौद्ध शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत बौद्ध धर्म की शिक्षा को पढ़ाया जाता था।
- वैदिक शिक्षा प्रणाली में शिक्षा का माध्यम केवल प्राचीन भाषा संस्कृत में ही पठन-पाठन हुआ करता था एवं बौद्ध शिक्षा प्रणाली में शिक्षा का माध्यम लोक भाषा पाली के रूप में दी जाती थी।
- वैदिक शिक्षा प्रणाली में आंतरिक अनुशासन पर अत्यधिक बल दिया जाता था और बौद्ध शिक्षा प्रणाली में बाह्यरूपी अनुशासन पर बल दिया जाता था।
- वैदिक शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत गुरु ही छात्रों के आचरण देखा करता था। किंतु बौद्ध शिक्षा प्रणाली में गुरु - शिष्य एक दूसरे के आचरण पर नजर रखते थे।
- वैदिक शिक्षा प्रणाली के अंतर्गत द्विज अर्थात् ब्राह्मण,क्षत्रिय एवं वैश्य वर्ण के व्यक्तियों को शिक्षा ग्रहण की जाती थी। बौद्ध शिक्षा में तो हर जाति वर्ग के लोगों को शिक्षा दी जाया करती थी।
- वैदिक शिक्षा में नारी को पढ़ने का अधिकार पूर्ण रूप से दिया जाता था तथा बौद्ध कालीन शिक्षा में नारी को न्यून रूप में ही शिक्षा दी जाती थी।
- वैदिक शिक्षा प्रणाली में ब्रह्मचारियों को कठोर अनुशासन तपोमय में जीवन जीना होता था। किंतु बहुत शिक्षा प्रणाली के अनुरूप भिक्षुओं का सुख पूर्वक जीवन व्यतीत हुआ करता था।
- वैदिक शिक्षा प्रणाली की भाषा संस्कृत भाषा के ही रूप में दी जाती थीं। तथा बौद्ध शिक्षा प्रणाली की भाषा पाली एवं लोक भाषाओं के रूप में दी जाती थी।

- वैदिक शिक्षा प्रणाली मैं शिक्षक ब्राह्मण ही हुआ करते थे।और वह शिक्षा प्रणाली के अनुरूप

  शिक्षक विभिन्न वर्गों में जातियों के रूप में हुआ करते थे।[122]

[122] भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं पृष्ठ सं. २१-२२

उपसंहार

तुलनात्मक शिक्षा के अंतर्गत उन सभी शक्तियों एवं कारणों का अध्ययन अपेक्षित है जो कि शिक्षा की प्रणालियों की पृष्ठभूमि में पाए जाते हैं। बिना इस प्रकार के अध्ययन के तुलनात्मक शिक्षा का अर्थ स्पष्ट नहीं हो सकता अर्थात् ये शिक्षा प्रणालियां सामाजिक और राजनीतिक विचारधारा अथवा दर्शन के आधार पर विकसित होती हैं।

वैदिक कालीन शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति का आध्यात्मिक विकास करना था। हमारे ऋषिमुनियों ने लौकिक तथा पारलौकिक जीवन में सुंदर सामंजस्य स्थापित किया था। लेकिन शिक्षा के अंतर्गत आध्यात्मिकता की प्रधानता थी। उत्तर वैदिक काल में पुरोहित वाद प्रबल हो चला था और विभिन्न ने दार्शनिक विचारधाराएं भी विकसित होने लगीं थीं। इस काल में सूत्रों की रचना हुई और गूढ़ विषयों को सूत्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया गया। भारतीय दर्शन को छ: प्रमुख शाखाओं का विकास भी उत्तर वैदिक काल में हुआ। इस प्रकार यह काल भारतीय शिक्षा एवं संस्कृति की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण था।

जब भारतीय समाज में ब्राह्मणों का प्रभाव पड़ा तब ब्राह्मणीय शिक्षा का विकास हुआ। ब्राह्मणीय शिक्षा ने चरित्र निर्माण पर अत्यधिक बल दिया था और इसके लिए गुरु शिष्य संबंध की ओर समुचित ध्यान दिया गया।

इसके अतिरिक्त ब्राह्मणीय शिक्षा ने आध्यात्मिक जीवन के साथ-साथ सामाजिक जीवन की ओर भी ध्यान दिया। फिर भी अपेक्षाकृत सामाजिक जीवन की कुशलता की उपेक्षा की गई क्योंकि ब्राह्मणों ने धार्मिक कर्मकाण्डों को अधिक महत्व दिया था। जो भी हो इतना तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि ब्राह्मणी शिक्षा ने व्यक्ति के चारित्रिक विकास को उच्च स्थान दिया और इसके लिए गुरु शिष्य संबंध और नैतिक अनुशासन को प्रमुख साधन बनाया।

भारत में जब बौद्धों का प्रभाव पड़ा तब बौद्ध शिक्षा प्रणाली का विकास हुआ। वह शिक्षा प्रणाली एक प्रकार से ब्राह्मण शिक्षा की प्रतिक्रिया थी और इसने यह प्रयास किया कि

शिक्षा सभी वर्गों के लिए समान रूप से उपलब्ध हो। जैसा कि हमें ज्ञात है कि बौद्ध धर्म ब्राह्मणों की सर्वोपरिता को स्वीकार नहीं करता और यह सामाजिक समता पर पर्याप्त बल देता है। इस प्रकार बौद्ध धर्म के प्रभाव के फल स्वरुप शिक्षा का जन्म जनता में अधिक प्रचार हुआ तथा लोक भाषाओं के विकास की ओर भी ध्यान दिया जाने लगा।

जब हम शिक्षा प्रणालियों का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं तब हमें ज्ञात होता है कि प्रत्येक शिक्षा प्रणाली के मूल में कुछ ऐसे घटक होते हैं जो सामान्य रूप से सभी शिक्षा प्रणालियों में पाए जाते हैं इसी के साथ हमें यह भी ज्ञात होता है कि प्रत्येक शिक्षा प्रणाली में कुछ ऐसी भी विशेषताएं होती हैं जो किसी अन्य शिक्षा प्रणाली में नहीं पाई जाती हैं। इसलिए शिक्षा प्रणालियों का इस प्रकार विश्लेषण किया जाए जिससे कि समान एवं भिन्न तत्वों का विश्लेषण हो सके। तुलनात्मक शिक्षा के विकास में यह तथ्य निहित हैं।

छठी शताब्दी ईसा पूर्व भारतीय वैदिक शिक्षा पूर्णरूपेण गुरुकुल शिक्षा प्रणाली पर आधारित थी। वैदिक शिक्षा पर ब्राह्मणों का वर्चस्व था। किन्तु बौद्ध धर्म की अभ्युदय एवं क्रांति के साथ ही प्राचीन वैदिक शिक्षा प्रणाली में भी परिवर्तन हुआ। एक नवीन शिक्षा प्रणाली का सूत्रपात हुआ जिससे हम “बौद्ध शिक्षा प्रणाली” कह सकते हैं। यह प्रणाली वैदिक प्रणाली से कुछ भिन्न होते हुए भी कई अर्थों में समान कही जा सकती ह।

यद्यपि बौद्ध शिक्षा प्रणाली का मुख्य उद्देश्य बौद्ध धर्म का प्रचार करना और निर्माण प्राप्ति में सहायता पहुंचाना था, किंतु कालांतर में उसके उद्देश्य में हुए परिवर्तन के साथ एक सुव्यवस्थित एवं विकसित शिक्षा प्रणाली का विकास हुआ।

ब्राह्मण एवं बौद्ध शिक्षा प्रणाली की विशेषता विशेषताओं, यथा विद्यार्थी का चयन एवं आयु, अध्ययन काल, दैनिक दिनचर्या, शिक्षक एवं छात्र की योग्यताएं, कर्तव्य, पाठ्यक्रम आदि की विवेचना करने पर हम पाते हैं कि सामान्य रूप से ब्राह्मणीय एवं बौद्ध शिक्षा प्रणाली में ना तो कोई अधिक अंतर है और न ही दोनों में अधिक समानता। अर्थात् जहाँ दोनों में अनेक समानताएं हैं वहीं दोनों में महत्वपूर्ण अंतर भी हैं। बौद्ध शिक्षा प्रणाली को वैदिक शिक्षा प्रणाली

का ही एक संशोधित रूप कह सकते हैं। दोनों शिक्षा पद्धतियों की समानताओं एवं असमानताओं की संक्षिप्त चर्चा अप्रासंगिक न होगी- वैदिक एवं बौद्ध शिक्षण संस्थाओं में गुरु शिष्य परंपरा के एक सामान्य नियम थे। पर दोनों प्रकार की शिक्षण संस्थाओं के चरित्र में मूल अंतर था। जैसे ब्राह्मण परंपरा में गुरुकुल में गुरु शिष्य के व्यक्तिगत संबंध मुख्य माने गए।

इस व्यक्तिगत संबंध के कारण गुरु के द्वारा शिक्षा पाने वाले शिष्यों की संख्या सीमित होती थी। जबकि बौद्ध विहारों में सामाजिक शिक्षा की परंपरा थी। बौद्ध विहार या संघ में सामूहिक शिक्षा एवं सामूहिक अनुशासन की परंपरा थी, जहाँ बौद्ध शिक्षा भिक्षुओं की असीमित संख्या होती थी। बौद्ध विहार एक स्वायत्त संस्था थे। इसका अपना एक कृषि फार्म होता था, छात्रों के भोजन की व्यवस्था होती थी, जिसमें विभिन्न वर्गों का सहयोग रहता था। जातकों में धनवान बालकों के लिए शिक्षक द्वारा भोजन तथा निवास के प्रबंध का वर्णन मिलता है।

भगवान बुद्ध ने भी शिष्यों के समस्त भार उपाध्याय के सिर पर रखने का आदेश दिया है। इसका समर्थन मिलिंदपंण्ड से भी होता है। इस तरह बौद्ध परंपरा में बाहरी संगठन की अधिक आवश्यकता थी। इसके विपरीत वैदिक परंपरा में गुरुकुल या आश्रम एक घर के समान होते थे। जिसने बाहरी सहायता या सामूहिक संगठन की कोई आवश्यकता नहीं थ। बौद्ध शिक्षा प्रणाली का सबसे बड़ा दोष यह था कि इनके बौद्ध विहारों में गुरुकुल या आश्रम के समान पारिवारिक स्नेह एवं घरेलू संबंधों का अभाव मिलता है। इसी प्रकार बौद्ध शिक्षा प्रणाली में धार्मिकता का आधिक्य एवं जीवन उपयोगी औद्योगिक एवं कला कौशलमयी शिक्षा की स्थिति इसके शिक्षा में सबसे बड़ा दोष सैनिक शिक्षा की अवहेलना तथा भिक्षुओं एवं भिक्षुणियों के सहनिवास के कारण क्रमशः अनाचार की वृद्धि थी।

बौद्ध संस्थानों में धार्मिक मतानुसार सभी वर्णों को एक ही शिक्षा दी जाती थी। वैदिक शास्त्रों की तरह प्रवेश एवं क्रम में वर्णगत भेदभाव का सर्वथा अभाव था। इस संबंध में विदेशी विद्वान् एफ़.ई. महोदय कम मत विचारणीय है ब्राह्मणीय विद्यालय में एकमात्र अधिकार को

समाप्त करने और सब जातियों के मनुष्य को शिक्षा अवसर सुलभ करने में बौद्ध धर्म ने भारत के लोगों में सामान्य शिक्षा की इच्छा का विस्तार किया था जिससे सार्वजनिक प्राथमिक विद्यालयों का विकास हुआ। ब्राह्मण शिक्षा प्रणाली की भांति बौद्ध शिक्षा व्यवस्था में भी गुरु को समाज में सर्वोच्च सम्मान एवं आदर प्राप्त था। वैदिक व्यवस्था में विद्यार्थियों के लिए एक निश्चित अवधि तक शिक्षा प्राप्त कर लेने के बाद "समावर्तन संस्कार" के रूप में विद्यार्थी गृहस्थ जीवन की ओर मुड़ सकता था जबकि बौद्ध शिक्षण संस्थानों में प्राय: इस प्रकार की व्यवस्थाओं का अभाव दिखता है। अतः इस दृष्टि से हम कह सकते हैं कि बौद्ध व्यवस्थाकार उस कल्पवृक्ष को ही काट रहे हैं जिस पर संपूर्ण सृष्टि अलंबित है ।

उपर्युक्त संदर्भ में वैदिक (ब्राह्मण) शिक्षा तथा बौद्ध शिक्षा के स्वरूप की तुलना के परिप्रेक्ष्य से प्राप्त बिंदुओं के सूक्ष्म तथ्य वर्णनीय हैं-

बौद्ध शिक्षा मठों, संघों तथा सुसंगठित शिक्षा संस्थानों में दी जाती थी। जबकि वैदिक शिक्षा गुरुकुलों गुरुग्रहों तथा आश्रमों में। वैदिक कालीन शिक्षा में पारिवारिकता अधिक थी जबकि बौद्ध शिक्षा में संस्थागतता।

वैदिक शिक्षा अपने स्वरूप में पितृवादी थी, जबकि बौद्ध शिक्षा में थोड़ा बहुत जनतांत्रिकता का पुट था। बीस वर्ष की आयु के बाद श्रवण अपने उपाध्याय का स्वयं चुनाव कर सकता था। "उपसंपदा" के बाद उसे यह भी अधिकार प्राप्त हो जाता था कि वह अपने उपाध्याय के नियम भंग को भी प्रकट कर सकता था। वैदिक शिक्षा में शिक्षण का माध्यम संस्कृत और बौद्ध शिक्षा में लोक भाषा।

वैदिक शिक्षा में विद्यार्थी जीवन बहुत कठोर एवं तपोमय में था, इसके विपरीत बुद्धि शिक्षा में विद्यार्थियों के लिए प्रशासन की भी व्यवस्था थी और जीवन अपेक्षित रूप में और आराम का था।

जहाँ तक बौद्ध धर्म से संबंधित शिक्षा, उसकी पद्धति, शिक्षार्थी, शिक्षक एवं शिक्षण संस्था का संबंध है, इस प्रणाली की अपनी प्राथमिक स्थिति इस बात का प्रमाण देती है कि वैदिक प्रक्रिया के समांतर ही इन सब की स्थापना है। यह शिक्षा का केंद्र बौद्ध संघ है तथा बौद्ध भिक्षुक विद्यार्थी हैं। इनकी भिक्षावृत्तियां ब्रह्मचारियों से अलग नहीं हैं। केवल इनके भिन्न-भिन्न परिचय हैं। ब्रह्मचारी शुक्ल धवल वेश में यज्ञोपवीत धारण कर हाथ में दंड लेकर मुण्डित सिर लेकिन मोटी शिखा सिर पर धारण कर गृहस्थ के आंगन में आता रहता रहा है।

बौद्ध पीतांबरी लेकिन खिन्न, उदास मन आकृति लेकर उन्हें गांवों में घूमता घूम रहा है। बौद्ध शिक्षण प्रणाली में ब्राह्मण धर्म में प्रचलित भिक्ष्यवृत्ति को नहीं छोड़ा, न हीं ब्रह्मचारी के कठोर साधना से अपना अलगाव ही प्रकट किया, थोड़ी-मोड़ी भी भिन्ताओं के शिवा अंतर है केवल पाठ विषयों को लेकर, यह न तो कर्मकांड को शिक्षण मिला, न हीं युद्ध विद्या। जहाँ तक संगीत एवं ललित कलाओं का प्रश्न है, यह बौद्ध चिंतन के संदर्भों से बाहर के विषय हैं।

श्रृंगार विद्याओं का कोई परीक्षा बोध शिक्षा प्रणाली में नहीं मिलता। बौद्ध भिक्षु प्रत्यय विज्ञान द्वारा एक बहत्तर साधना प्रणाली का समर्थन करता है। इसलिए शिक्षा में धर्म गुरुओं द्वारा इसी तरह की देशनाएं एवं उद्बोध प्राप्त है। शिक्षण प्रचारात्मक है, इसलिए बौद्ध भिक्षुओं को शिक्षा प्राप्त करके घूम-घूम कर उपदेश देना तथा राज दरबारों में जाकर अनुकूल स्थितियों का निर्माण करना इसी शिक्षण योजना का भाग रहा है। सामूहिक शिक्षण, यात्राओं का उल्लेख प्रातः काल गृहस्थ के द्वार पर जाकर "संघम् शरणम गच्छामि" की घोषणा तथा बौद्ध धर्म को राजधर्म की तरह प्रतिष्ठित करने का यत्न, भिक्षु आचार्यगण तथा पीठ के नायक स्थाविर का उद्देश्य दिखता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि

प्राथमिक स्रोत-

- ऋग्वेदभाष्यम् - दयानंद सरस्वती संपादक, दयानंद अर्पण, भागवती लेजर प्रिंट्स. नई दिल्ली
- यजुर्वेद भाष्यम्- दयानंद सरस्वती संपादक- श्रद्धानंद वैदिक शोध संस्थान, श्रद्धानंद अनुसंधान प्रकाशक- केंद्र हरिद्वार
- अथर्ववेद भाष्यम् - पंडित हरिशरण सिद्धांतालंकार संपादक स्वामी जगदीश्वरानंद प्रकाशन श्री घूडमल प्रहलाद कुमार आर्य धर्मार्थ न्यास ब्यानिया पाड़ा हिंडौन सिटी राजस्थान २०१४
- अथर्ववेद शौनकीयशाखा - सायणाचार्य कृत भाष्य संयोजित संपादक, मंडल मित्र श्री लाल बहादुराष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठम् दिल्ली
- निरुक्त यास्क- दुर्गाचार्यकृत- ऋज्वर्थाख्यव्याख्यानुसारिन्या संपादक- झा. मुकुंद बक्शी, चौखंबा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली
- अंगुत्तरनिकायपालि-संपादक एवं अनुवाक, स्वामी द्वारिकादास शास्त्री,बौद्ध भारती वाराणसी २००९
- अंगुत्तरनिकाय- अनुवादक, भदंत आनंद कौसल्यायन, सम्यक प्रकाशन, नई दिल्ली २०१६
- उदानपालि- विपश्यना विशुधन विन्यास, इगतपुरी १९९५
- खुद्दकपालि- अनुवादक एवं संपादक स्वामी द्वारिका दास शास्त्री, बौद्ध भारती वाराणसी २००३
- गन्धवंसो- संपादक, विलमेन्द्र कुमार, स्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली १९९२

- दीघनिकाय- अनुवादक, राहुल सांकृत्यायन एवं भिक्षु जगदीश कश्यप भारती बौद्ध शिक्षा परिषद बुद्ध विहार लखनऊ १९७९
- धम्मपद- अनुवादक, भिक्षु राहुल सांकृत्यायन, बुद्ध विहार, रिसालदार पार्क, लखनऊ, १९८६
- सुत्तनिपात- संशोधक, अंगराज चौधरी, नालंदा महाविहार, नालंदा बिहार १९६४
- समन्पासादिका- संशोधक, एस मुखर्जी एवं बीरबल शर्मा, नालंदा महाविहार १९६४

द्वितीयक स्रोत

- सरस्वती, दयानन्द ,महर्षि, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका,(संस्कृतार्यभाषा निर्मित) प्रकाशक, वैदिक पुस्तकालय यह दयानंदाश्रम, अजमेर,३०५००१
- उपाध्याय, कृष्णदेव, लोक संस्कृति की रूपरेखा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
- त्रिपाठी, राधावल्लभ, संस्कृत कविता में लोकजीवन, यश पब्लिकेशंस दिल्ली
- उपाध्याय, बलदेव, वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान वाराणसी
- द्विवेदी, कपिलदेव, अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन, विश्वभारती अनुसंधान परिषद, नागपुर
- द्विवेदी, कपिलदेव, वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी
- सिद्धान्तालंकार ,सत्यव्रत, वैदिक संस्कृति का संदेश, विजय कुमार गोविन्दराम हसानन्द नई सड़क, दिल्ली
- व्याख्याकार, सिद्धांतालंकार विद्या मार्तंड डॉक्टर सत्यव्रत संस्कार चंद्रिका (संस्कार विधि की व्याख्यानिक व्याख्या) अखिल भारतीय मंगलाप्रसाद-पारितोषिक- विजेता प्रकाशक विजय कृष्ण लखनपाल डब्ल्यू- ७७ ए/ग्रेटर कैलाश-१ नई दिल्ली -११००४८

- उपाध्याय, पूर्णचं,द्र वैदिक संस्कृति का विश्वकोश भूमिका पदम श्री आचार्य क्षेमचंद्र सुमन प्रकाशन- आर्य प्रकाशक मंडल १x/२२१ मैन रोड गांधी नगर दिल्ली ११००३१
- गुरूदत्त, वेद और वैदिक कला,संपादक कौशिक ,प्रकाशन, हिंदी साहित्य सदन नई दिल्ली ३० पी. कनॉट सर्कस नई दिल्ली.११०००१
- साहित्य शिक्षा एवं संस्कृति प्रकाशक प्रभात प्रकाशन चावड़ी बाजार दिल्ली ६
  द्वारकाशी विद्यापीठ के लिए प्रकाशित काशी विद्यापीठ, वाराणसी संस्करण प्रथम १९८८
- प्रसाद, ईश्वरी, प्राचीन भारतीय संस्कृति कला राजनीति धर्म तथा दर्शन, एम. ए. एल. एल. वी. डी. लिट्.
  भूतपूर्व एम.एल.सी.(इतिहास शिरोमणि. नेपाल) एवं शैलेंद्र शर्मा एम. ए. प्रकाशन मीनू पब्लिकेशंस २०म्योर रोड, इलाहाबाद
- चौवे,डॉक्टर सरयू प्रसाद,भारतीय शिक्षा का इतिहास, शिक्षा विभाग लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ, प्रकाशक रामनारायण लाल प्रकाशक, प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता इलाहाबाद
- वेदश्रमी, श्री वीरसेन, वैदिक सम्पदा, प्रकाशक,विजय कुमार गोविंदराम हासानंद ४४०८ नई सड़क दिल्ली ११०००६ भारत
- वेदश्रमी, श्री वीरसेन, वैदिक संस्कृति, प्रकाशक, विजय कुमार गोविंदराम हासानंद ४४०८ नई सड़क दिल्ली ११०००६ भारत
- विद्यालंकार, सत्यकेतु ,प्राचीन भारतीय इतिहास का वैदिक युग, प्रकाशक श्री सरस्वती सदन,ए १/३२ दफदरजंग इंक्लेव,नई दिल्ली ,११००२९
- जौहरी, वी.पी,एवं पाठक पी.डी., भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं, प्रकाशन, विनोद पुस्तक मंदिर हॉस्पिटल रोड,आगरा

- बाजपेयी, डॉक्टर शिवाकांत,प्रारंभिक बौद्ध धर्म संघ एवं समाज प्रकाशन,ज्ञान भारती पब्लिकेशन,(प्राच्य विद्या प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता) २९/५,शक्ति नगर,दिल्ली ११०००७
- शुक्ला हरिशंकर, अभिधर्म बिंदु, काशी हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी २००१
- कौशल्यायन, भदंत आनंद, बौद्ध धर्म का सार, जि. अलीगढ़ उत्तर प्रदेश १९४८
- बनारसीदास,नरेंद्रदेव, मोतीलाल पब्लिशर्स, बौद्ध धर्म दर्शन प्राइवेट, लिमिटेड, दिल्ली २०१५
- पांडेय विजयलक्ष्मी, बौद्ध संघ का स्वरूप एवं विकास, प्रतिभा प्रकाशन, शक्ति नगर नई दिल्ली १९९७
- पांडेय गोविंदचंद्र, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास उत्तर प्रदेश, हिंदी स्थान लखनऊ १९९०

कोश ग्रन्थ

- शब्दकल्पद्रुम (राजाराधा का देव बहादुर) संपादक, वसुना, वरदा प्रसाद, वसुन हरिचरण,नाग पब्लिशर्स दिल्ली
- अमरकोश (रामाश्रमी व्याख्या विभूषित) संपादक, हरगोविंद शास्त्री,चौखंबा संस्कृत संस्थान, वाराणसी
- आप्टे वामन, शिवराम संस्कृत हिंदी कोष ,चौखंबा संस्कृत भवन ,वाराणसी
- निरुक्त (निघंटु सहितम्) व्याख्याकार ,शास्त्री सीतारम,दिल्ली,परिमल पब्लिकेशंस षष्ठ संस्करण २०१४
- पाली हिंदी कोश कौशल्यायन, भदंत, राजकमल प्रकाशन, प्रा. दिल्ली २००९
- आदर्श हिंदी शब्दकोश, संपादक, रामचंद्र पाठक भार्गव, बुक डिपो वाराणसी १९९४
- हिंदी पाली शब्दकोश, संपादक छुटानी, सम्यक प्रकाशन नई दिल्ली २००८